अन्ततः

प्रकाशक
पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

हिमांशु जोशी | अन्ततः

अन्ततः
कहानी संग्रह

•

प्रकाशक
पूर्वोदय प्रकाशन
८ नेताजी सुभाष मार्ग
दिल्ली ६

•

मूल्य: तीन रुपये पचास पैसे

प्रथम संस्करण
१९६२

•

मुद्रक
राष्ट्र भारती प्रेस
कूचा चेलान दरियागंज
दिल्ली ६

भारती। निधा। दिर
बानानर

'निर्मल वर्मा को

ये कहानियाँ

लगभग सात आठ वर्षों की अवधि में जितनी कहानियाँ लिखी उन में से कुछ यहाँ एकत्रित की गई हैं—समय एवं विविधता के क्रम से।—मेरे प्रथम कहानी-संग्रह के रूप में। सृष्टि के साथ-साथ दृष्टि बदलती है। इसलिए कहानियों में भी बदलाव दीखे तो अचरज नहीं। कहानी मात्र कहानी ही नहीं रही अब परम्परा से परे कुछ और भी है—यथार्थ का तटहीन प्रतिबिम्बन—एक नए संदर्भ में एक सचाई।—सांकेतिक। शब्दों का ऐसा संगीतमय साकार सजीव चित्र—सरकण्डों की तरह जिसके विविध आयाम होते हुए भी हर आयाम अपने में पूर्ण—एक पूरा चित्र हो।—कुछ-कुछ इसी दिशा में इधर सोचने लगा हूँ। इसलिए कहीं-कहीं यह कहानी छूट गई है जिसे अब तक लोग कहानी मानते आए हैं।

कहानी लिखने के बनिस्बत भाष्य लिखने में अधिक रुचि नहीं रही जैसा कि अपनी ही पीढ़ी के कुछ लोग अब तक करते आए हैं। वस्तुतः हर क्रिएटिव कलाकार अपने में अकेला होता है। हर कहानी स्वयं को स्वतः व्यक्त करती है।

जिस दिशा की ओर मेरा इंगित है यह मेरी कहानियों से प्रतिबिम्बित हुआ तो अपना प्रयास सफल समझूँगा।

कहानियों का इस रूप में सजाने का श्रेय भाई प्रदीप जी का है जिनका आभारी नहीं हूँ। अपनों का ही कहीं आभार माना जाता है!

नई दिल्ली
मार्च १९६५

हिमांशु जोशी

अन्ततः

•

बावला है बिरजू। निरा बावला। जब से गोसाइं बाबा गए, बूढ़ी बिनिया ने अपने मुंह के टुकड़े से पाला-पोसा। पर टूटे करम की रेख मिट न पाई। करम-देवता की धूनी पर जा उसने क्या मान-मनौती न की। तीरथ-बरत के लिए टका कहां! लेकिन ऐसा कोई दिन नहीं छिन नहीं जब उसने हरजी के थान में जा अपनी बिपता न सुनाई। परमेसर तो सब की सुनते हैं। पर उसी के भाग फूटे—तो क्या!

सब के लड़के सौ-सगन में मिहनत-मजदूरी करते हैं। रूखा-सूखा कुछ तो पेट को मिलता ही है। किन्तु बिनिया का बिरजू कुछ नहीं करता। दिन भर डोला फिरता है। कहीं कूड़े के ढेर से जली-बुझी बीड़ी के टुकड़े बटोर लिए। किसी के पान-दुकान से छन खींच लिया। जूठा कूठा कहीं कुछ मिल गया तो ठूंस लिया। नहीं तो राम का नाम जप, पड़ी चदरिया तान ली।

बुढ़ापे के भार से बिनिया की कमर झुक आई। बाल सन की तरह सफेद हो गए। मुरझाए मुखड़े पर अनगिनत रेखाएं घिर गईं। आंखों

की जोत भी अब उतनी न रही। फिर भी दिन रात मिट्टी से सनी रहती। बरखा घाम साँझ-सकारे की कुछ भी परख न थी उसे। दो दुधमुहे, अनाथ बेवते साथ-साथ कर घर आते ही चिपट जाते। बिरजू झाड़ पोंछ कर सब दिन में ही साफ किए रहता। सबके घर दिन में दो बार चूल्हे जलते हैं। पर अभागी जिनिया अपनी रीती हँड़िया में क्या उबाले! उपरों की आँच में क्या सेंके! चूल्हा तो रोज ही जलता लेकिन अधिक तर केवल धुएं का गुबार उमड़ कर रह जाता।

फूल डोल के मेले में इस बरस नौटंकी आई है। किसन महाराज की लीला है। गाँव भर के छोटे-बड़े सभी छोकरा में दिनों से धूम सी हो रही थी। अन्त में जब सच हा दसमी का दिन आया सच ही सब मेल गए तो बिरजू भी अपने को जाने से रोक न पाया। वह भी पीछे-पीछे चल पड़ा। सभी ने दो पैसे आने दो आने के टिकट खरीदे। ठाठ से अन्दर घुसे। पर बिरजू के पास पैसे कहाँ! टिकट कहाँ! फिर उसे अन्दर जाने भी कौन देता? अतः द्वार पर ही झिड़क कर परे धकेल दिया।

गैस-बत्तियों की रौशनी गाने-बजाने की आवाज़ बाहर भीतर की चमक दमक उसे बड़ी भली लगी। बहुत रात तक वह टिन की चादरों की आड़ से इधर उधर से छेद-सूराखों से ताक झाँक करता रहा।

आधी रात गए बड़ी मुश्किल से घर लौटा। किसन महाराज की लीला छोड़ने को मन न होता। लेकिन जब कोई जबरदस्ती धकेल कर ले ही चला तो क्या करता!

रास्ते में ही कभी वह एक पाँव पर खड़ा होकर बँसुरिया बजाने का स्वाँग भरता। कभी रास-लीला का। कभी कहीं पेड़ की लटकती जड़ दीखती उसी को दोनों हाथों से कस कर जकड़ लेता और नाग-मर्दन की तरह देर तक इधर-उधर हवा में घुमाता रहता। फिर छिनकता उछलता कूदता। ग्वाल-बालों की तरह चौकड़ी भरता। और फिर कभी टिक

पड़ता। विरहिन नायिकाओं की तरह हाथ हवा में उछाल-उछाल कर छीने पर पटकना और अनायास अकारण रो पड़ता।

लोग ये करतब देख कर ठहाका मार कर हसते "बिन बिरजू को क्या!

घर लौट कर सोया पर नींद कहां!

दूसरे दिन भोर उगते ही अम्मा से बोला— माई हम भी गया बछिया चराएंगे। बनाई महाराज बनेंगे। बस तब बसुरिया ला द। बोल रोज माखन मिसरी देगी न!

"किसको गया चराएगा? घर मा गूंगी भी पड़ी है एक!" खीझती हुई बुढ़िया माई बोली—'माखन मिसरी ही भाग मा होती तो मैं फूहा करम ल क अभागिया मा जनमती ही काहे को?

बिरजू चुप बठने वाला कब था! सुबह उठते ही पड़ोसिन मनिया की गाय भस खोलने लगा तो हाया-पाई तक की नौबत आ गई गाली गलौज स— निगोड़े दाढ़ीजार अब हीन सीख लिहो ! छप ने फटकारना शुरू किया।

तब दिन भर बदरिया पच म भटकाए सारे गांव का चक्कर काटता रहा। पर इस पागल के हवाले अपना ढोर डगर करता कौन! अन्त में अमराई क उस पार नजर पड़ी। देखा—बिसनुवां क दो बल चर रहे हैं। लाठी लिए उधर अनुप भागा और उन्हें ही जगल हांक ल चला।

शाम को ठीक समय पर वापस भी लौट आया। बिसनुवां के दालान में उन्हें गढ़ा कर बोला — बनाई महाराज गढ़ा है बिसनवा! दओ माखन मिसरी!

बिसनुवां झोपड़िया से बाहर आया। देखा कि बल धास धपा कर गदगद बने हैं। घबरा स बोला— बिरजवा क तन का जगह स ल्याति र!

"बिरजुआ बोलत है ल्यार! सुनत कर बिरजू बोला महाराज बनाई बोर! देखो माखन मिसरी! महाराज जात है।

बिसनुवा की बहू किवाड़ के ओट खड़ी झांक रही थी। गुड़ की डली लाती हुई मुसकराकर बोली— ले लो लल्ला! गया घराय के मिलत है माखन मिसरी. बल घराय के नहीं। अगहन मा परमेसर ने सुनी तो गैया खरीदेंगे तब मिलेगी महाराज को माखन मिसरी।

इतने पर ही बिरजू सन्तुष्ट होकर चला गया। अब सब यही उसका नेम-नियम हो चला। बिसनुवा के बल मचा कर हाथी हो गए। एकाध डली गुड़ कनाई-महाराज को भी मिलती रही। उसी पर वे मगन रहे। हाथ में निगाले की बांसुरी माथे पर मोर-पखना पीठ में काली कमलिया लिए फिरते रहे।

इस साल खबर उड़ी कि हरिमपुरा में राम लीला होगी। सात-आठ दिन तक रहेगी। खूब रौनक रंग धूम धाम मचेगी। तब वह भी एक बसुरिया मोर-पखना लिए जा धमका। चौधरी चाचा कमेटी के परधान बरता धरता थे। अतः उनके पास जा बिनती के किसी हद तक शिकायत के सुर में बोला— कमनिया हरीस को तो राम-लछिमन को पाठ दिहौ और कनाई-महाराज की कौनो खबर नाहि!

चौधरी चाचा क्या करते! क्या कहते इस बावरे से! कुछ सोचते हुए टालते हुए बोले— राम-लीला मा तो राम लछिमन ही होत हैं किसन-कनाई नहीं। जब महाराज की लीला होगी तो कनाई का पाठ तुम को ही दिया जायगा। जाओ मोर-पखना सम्हारिके धरो। वक्त पर काम आवेगा।

बिरजू की सहज बुद्धि ने सहज ही इसे भी स्वीकार कर लिया। ठीक ही तो कहते हैं काका! राम लछिमन की लीला में महाराज का पाठ कहां से आएगा!

लेकिन फिर भी वह रोज बिना नागा लीला देखने जाता। सीता हरन और दसरथ-मरन के दिन तो वह खूब ही फूट फूट कर रोने लगा। भरत की भ्रातृ भक्ति पर उसकी अगाध आस्था थी। किन्तु उसमें भी

अधिक प्रभावित था—बजरंग से। अयोध्या की चमक-दमक जनकपुरी का अमन विलास कुछ भी उसे अपनी ओर खींच न पाया। बस लम्बी पूँछ वाले राम भक्त बन्दर का ही पुजारी बन बैठा वह। लंका दहन के दिन तो और भी बावला हो उठा। बजरंग बली की ज ज जै !' कहता हुआ स्टेज की तरफ आँखें मूंदे लपका तो दो चार स्वयं-सेवकों ने रोक लिया। अनेकों तरह से समझाया-बुझाया। नहीं तो न जाने क्या कर बैठता !

दूसरे दिन से वह रोज बजरंग—च्चबूतर दहा के पर जाकर बड़ी श्रद्धा से प्रणाम करता। बजरंग की छाप उसके अबोध हृदय पर ऐसी पड़ी कि मोर-पखना बांसुरिया बिसनुवां के बल सब भूल गया। अपने को ही होने वाली लीला का बजरंग समझने लगा अब।

सोन की टेढ़ी-मेढ़ी लकड़ी की लम्बी पूंछ बना ली। मुगदर पर फटे पुराने चीथड़ लपेटकर हनुमान की गदा भी बन गई। दिन रात उन्हीं के साज शृंगार में लगा रहता। जो कोई भी मिलता उसी से कहता—'ये ई साल बजरंग जल्दी ही लंका जराय डारेंगे। सीता माई क हरन से पहले ही रावन राकस मारि डारेंगे।

दिन भर फिर कर अन्त में सन्ध्या को घर आता। आते ही पहले पूछता— माई आज तू किसके संग मा काम करने गई? माई के मुख से कहीं भूल से गुमेर पधान का नाम निकल पड़ता तो उसकी सारी देह फुक जाती। दांत पीस कर कोप से कांपते हुए चिल्लाता वह— राक्सनी है तू! फिर रावन के संग मा काहे गई? राम लछिमन के संग मा जाओ! भिभीखन-सुगरीव महाराज के संग मा जाओ। जनक महाराज क खेत मा जाओ। पुनः रावन क संग मा गई तो बजरंग तोरी मर्दइया जराय डारेंगे! कमर तोड़ि डारेंगे! वह आवेश में मुगदर घुमाने लगता। सीता क बजरंग की तरह हाथ-पांव नचाना शुरू कर देता।

एक दिन न जाने क्या लहर चढ़ी। परेशान-सा सीधा मंगोरिया मुहल्ले के घर जा पहुंचा। रातभर सारी रात सोया नहीं। आंखों में लाल

बिसनुवां की बहू किवाड के ग्रोट खडी झांक रही थी। गुड की डली लाती हुई मुसकराकर बोली— ले ग्रो लल्ला! गया घराय के मिलत है माखन मिसरी बस घराय के नहीं। ग्रगहन मा परमेसर ने सुनी तो गया खरीदेंगे तब मिलेगो महाराज का माखन मिसरी।

इतने पर ही बिरजू सन्तुष्ट होकर चला गया। जब-तब यही उसका नेम नियम हो चला। बिसनुवां के बल मया कर हाथी हो गए। एकाध डली गुड कनाई-महाराज को भी मिलती रही। उसी पर वे मगन रहे। हाथ ■ निगाले की बांसुरी माथे पर मोर-पखना पीठ में कारी कमलिया लिए फिरत रहे।

इस साल खबर उडी कि हरिनपुरा में राम लीला होगी। सात-ग्राठ दिन तक रहगी। खूब रौनक रग धूम धाम मचगी। तब वह भी एक बसुरिया मोर-पखना लिए जा धमका। चौधरी चाचा कुमटी के परधान, करता धरता थ। ग्रत उनके पास जा बिनती के किसी हुन तक शिकायत के सुर म बोला— कुमनियां हुरीस को तो राम-लछिमन को पाठ दिहों ग्रौर कनाई-महाराज की कौने खबर नहिं!

चौधरी चाचा क्या करते! क्या कहते इस बावरे से! कुछ सोचते हुए टालत हुए बोल— राम-लीला मा तो राम लछिमन ही होत हैं किसन-कनाई नहा। जब महाराज की लीला होगी तो कनाई का पाठ तुम को ही दिया जायगा। जाग्रो मोर-पखना सम्हारिके धरो। वकत पर काम ग्रावगा।

बिरज की सहज बुद्धि ने सहज ही इसे भी स्वीकार कर लिया। ठीक ही तो कहत हैं काका! राम लछिमन की लीला म महाराज का पाठ कहां स ग्राएगा!

लकिन फिर भी वह रोज बिना नागा लीला देखने जाता। सीता हरन ग्रौर दसरथ-मरन के दिन तो वह सच ही फूट-फूट कर रोने लगा। भरत की भ्रातृ भक्ति पर उसकी ग्रगाध ग्रास्था थी। किन्तु उसमे भी

अधिक प्रभावित था—बजरंग से। अयोध्या की चमक दमक जनकपुरी का भव्य विलास कुछ भी उसे अपनी ओर खींच न पाया। बस लम्बी पूछ वाले राम भक्त बन्दर का ही पुजारी बन बैठा वह। लंका दहन के दिन तो और भी बावला हो उठा। बजरंग बली की ज ज जै !' कहता हुआ स्टेज की तरफ आँखें मूंदे लपका तो दो चार स्वयं-सेवकों ने रोक लिया। अनेकों तरह से समझाया-बुझाया। नहीं तो न जाने क्या कर बैठता!

दूसरे दि न से वह रोज बजरंग—दबधर दद्दा के घर जाकर बड़ी श्रद्धा से प्रणाम करता। बजरंग की छाप उसके अबोध हृदय पर ऐसी पड़ी कि मोर-पलना बासुरिया बिसनुवा के बल सब भूल गया। अपने को ही होने वाली लीला का बजरंग समझने लगा अब।

सो‍न की टेढ़ी-मेढ़ी लकड़ी की लम्बी पूछ बना ली। मुग‍्दर पर फटे पुराने चीथड़ लपेटकर हनुमान की गदा भी बन गई। दिन रात उन्हीं के साज शृंगार में लगा रहता। जो कोई भी मिलता उसी से कहता—'ये ई साल बजरंग जल्दी ही लंका जराय डारेंगे। सीता माई क हरन से पहले ही रावन रावन मारि डारेंगे ।

दिन भर फिर कर अन्त में सन्ध्या को घर आता। आते ही वह पूछता—'माई आज तू किमके खेत मा काम करने गई? माई के मुख से कहीं भूल से मुमर पधान का नाम निकल पड़ता तो उसकी सारी देह फुक जाती। दांत पीस कर क्रोध से कांपते हुए चिल्लाता वह—रावसनी है तू! फिर रावन के सेत मा काहे गई? राम लछिमन के खेत मा जाओ! बिभीसन-सुगरीव महाराज के खेत मा जाओ। जनक महाराज के खेत मा जाओ। सुना रावन के खेत मा गई तो बजरंग तोरा मुण्डिया जराय डारेंगे! कमर तोड़ डारेंगे! वह आवेश में मुग‍्दर घुमाने लगता। सीता के बजरंग की तरह हाथ-पांव नचाना शुरू कर देता।

एक दिन न जाने क्या लहर चढ़ी। परेशान-सा सीधा भगीरथ मुखिया के घर जा धमका। रात‍ भारी रात सोया नहीं। आंखों में लाल

और साफ झलक रहे थे। लीला में हनुमान की तरह राम को दण्डवत प्रणाम किया। घुटनों के बल खड़ा दोनों हाथ जोड़ता हुआ फिर बोला—

महाराज बात तो बताओ! बजरंग ने लंका जराई! महाराज अपने हाथों रावन मारि हो! पर रावन तो हम रोज ही देखत हैं महाराज!

कहां? सहज विस्मय से भगीरथ ने पूछा।

निमजला मा बठि के तिजारत करत है! बिरजू उसी रफ्तार से बोला गाव को पधान बनत है। आवत बार बुलावत रहा। तमाखू आधी बिरजुआ बोलत रहा। हम थुक के धुतकार देहन— हम बिरजुआ नहीं बजरंग हैं। हम महाराज के घर जात हैं। रावन तू देखत का है! तोरी लंकापुरी अब के हम जराय डारेंगे!

हि स स! जीभ काटते हुए भगीरथ बोले यह क्या? सुमेर पधान का घर जलाने को कहता है! कहीं सुन लिया तो खाल उधेड़ देंगे तेरी। जानता नहीं महाजन हैं। दो गांव के पधान! सब बिरजू, तू बौरा गया है रे!

सांप की तरह फुफकारता बिरजू बोला— कहत का हो! महाराज हो कर डरत हो! तुम राज-पाठ करो। हम जराय डारेंगे लंका सारी!

चुप-चुप कहते हुए भगीरथ चुप कराने लगे। लेकिन दूसरी ओर आग पर घी छूट रहा था— लीला म तो धनुष ले के रावन मारत हो! यहां चुप-चुप करात हो! महाराज होकर का तुम भी डरत हो?

'लीला तो लीला है बिरजू! ऐसी बातें नहीं बकते। मेरी मुर्दारिसी खतरे में पड़ जाएगी। तेरा क्या है! तू तो रोज का फिरता है! मैं बाल-बच्चे वाला!

बिरजू उबल पड़ा— तो हम बताओ!—झूठ-मूठ लीला गढ़ देत हो! पण्डत हो के झूठी लीला रचत हो! पाखण्ड करत हो!!

भगीरथ क्या करें। क्या कहें के समझाएं-बुझाएं। लीला तो लीला है। उसकी बात और है बिरजू! यह तो घर की बात है। खिसि

माने स्वर में बोले।

'अपन बोलत हो! डरत हो रावन से! झूठ सीना तनत हो! निगोड़ा! रावन मरिके उठत है! जिन्दा होई जात है! तिमजना मा बठि सिजारन करत है! ओर गवई-गवार समझ के हमको ठगत हो! धोखा देत हो! झूठे राम बनत हो! पहले अब रावन भी सका नहीं झूठे राम—सारी अजुध्या जराय डारेंग। फूक डारेंग दुनिया सारी। चाण्डाल ठगत हो हम!'

पागल-सा वह मुगदर नचाता हुआ बाज की तरह झपटा। लोगों ने किसी तरह बीच-बचाव किया और उससे पल्ला छुड़ाया।

हारे सिपाही की तरह हताश निराश बिरजू घर लौटा। क्रोध से उसका पागलपन आज चरम सीमा पर था। मुगरी उसी समय उसने आग में झोंक दी। पूछ तोड़ मरोड़कर फेंक डाली और चौपाल पर हाथ-पांव पसारे धनुष लेट गया।

सांझ के समय नींद खुली। जागा। अपनी पत्नी चम्परिया गलेन्दर पर पहुंचा। उदास बोला— माई इस गांव मा हमारी गुजर नाहीं। सब झूठ दाढ़ीजार समझत है हिया। हम जात हैं।

उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही बिरजू बाहर निकल पड़ा। पीछे में चम्परिया हाथ में लकुटिया लिए उस अंधियारे में न मालूम कहां खो गया! बूढ़ी माई चीखती-चिल्लाती रोती रही। पर बिरजू लौट कर न आया।

महीने बीत गए। बिरजू का कोई पता-ठिकाना न मिला। कोई हस्तिनपुरा की तरफ तो कोई दमागर की तरफ बताता। कोई कहता बिरजू अब पूरा पगला हो गया। कोई कहता—बिरजू ने बैराग ले लिया। बिजनो आंगन में सिर गड़ाए फूट-फूटकर अपने फूटे करम को रोती रहती।

मान मनौती फिर शुरू की। हरजी के थान में और जोर से फरियाद

पहुंचो। लेकिन कहीं कोई आसार झलकते न थे।

सन्ध्या के समय एक दिन दरवाजे पर आवाज सुनाई दी—"मा ई।

हड़बड़ाती हुई वह द्वार की ओर लपकी— कौन बि र जू!

दरवाजा खोलकर देखा—दुबल हड्डियों का ढांचा खड़ा है। हाथ में लाठी एक फटा चीथड़ा कमर म लपेटे। दूसरा कन्ध में। बनावटी ऊन की बकरे की सी दाढ़ी है। आंखों पर गोल-गोल छल्ले-स पड़ हैं—चश्मे की तरह।

कौ—न! हमार बिरजुवा है रे तू! धुंधली आंखों को बुढ़िया ने फिर मला।

बिरजुवा हिरजुवा हम नाहिं जानत है माई! हम तो दाढ़ी बाबा हैं। जमीन मागत हैं दान मा। पसा-टका मांगत हैं! देवो जमीन! गाधी महराज को हुकुम है!

'बिरजू बिरज! मा लिपट पड़ी। इत्त रोज को अब आयो! का सच ही बौराय गयो बिरजू! रोत रोत हम अन्धा होइ गइन! अब घर मा बठो। कोनो मिनिया करके हम खवावहि बि र जू!

बिरजू वैसा ही खड़ा। जसे कुछ भी सुना समझा न हो। वैसे ही बहके स्वर में बोला— बिरजुवा मिरजुवा नही! देओ माई कुछ तो जमीन देओ!

बिरजू जे का कहत है! हताश बुढ़िया ने कहा जर-जमीन हमरे लग कौन धरी है! दूसरा के खेत मा काम करत हैं। बठो बिरजुवा। हाड़ दीखत हैं। बीमार भी है का?

कुछ भी बोल न पाया वह। देर तक खड़ा रहा। फिर मुड़ता हुआ भीगी आवाज म कहने लगा— मुलक मुलक मा जाना है माई! हमरे लगे कहां कौन ठौर धरी है!

गाव-गाव घर घर यही अब उसका नियम हो चला। सुना था हरिनपुरा म एक बार जमीन मांगने के लिए एक बाबा आए थे। उनकी

बातों का बस ऐसा रंग चढ़ा कि उस दिन से उन्हीं का चेला बन बैठा। वैसी ही दाढ़ी बढ़ा ली, वैसा ही रूप रंग बनाकर भटकता रहता—घर घर, द्वार द्वार दीन-दुखियों का मसीहा बनकर अलख जगाता।

एक लम्बे अर्से तक बिरजू की फिर कोई खबर न लगी। बाद में पता चला कि वह दवागर में बीमार पड़ा है। जमीन मांगने के सिलसिले में झगड़ा हो गया। किसी पुराने जमीदार के मुख्तार मुहल्ले लठैतों ने उस निहत्थे पर लाठी मार दी। शिवाले में वह कराहता पड़ा है। कोई पानी के लिए भी पूछने वाला नहीं।

अभागिन बुढ़िया क्या करे! सारे पड़ोसियों की देहरी-देहरी जाकर अपना दुखड़ा रोई। किसी तरह गांव की बदनामी या लोक-लाज के डर से रमिया के ककवा, छिब्बन के मामा पन्निया के ताऊ और पण्डत कबीराम के भानजे मायाराम तयार [illegible]। रातों रात दवागर पहुंचे। देखा—बिरजू अचेत पड़ा है। कपड़े तार-तार फटे हैं। जगह जगह रिसते घाव हैं। पोर सूजे हैं। बाल बिखरे। रह रहकर कराहने की आवाज आ रही है—"दे दो जमीन दे दो। गांधी महाराज को। बाबा को जमीन दे दो। ज मी न।"

डोली पर लादकर बिनियो घर लाई। दिन रात टहल-टुकड़े में लगी रही। बायां हाथ टूट गया था। सारा शरीर जख्मी था। हर दम कसकता-दुखता रहता। कितनी जड़ी-बूटी झाड़ फूंक की पर दम से भी न हुई।

गुनिया बीच एक दिन भजन सुन रहे थे। अभी तक इतनी रात गए मामी सोई न थी।

मामा बतई कथा हो? चूल्हे से कुनमुनाती गुनिया ने कहा।

देर तक बिरजू देखता रहा। देखता रहा। जैसे किसी दूसरी दुनिया में डूबा हो। कुछ सोचता हुआ फिर बोला—"नाहिं बतई नाहिं। ध्यान पूरे सब दिया कबीर के आगे।

मुनियाँ ने अपनी नन्हीं हथेली से समेट कर सब सामने रख दिया। उसमें से मुवा बिरजू ने बटोर लिए। सुतली में गूथ कर दाढ़ी बना ली। फिर कराहता हुआ, वैसे ही अकड़कर बोला— सुनो सुनो! बाबा आवत हैं। सुनो!

फटी गुदड़िया के ऊपर अपना दुबला तन रखा। किसी तरह पालथी मार ली। चदरिया का फटा टुकड़ा बाबा की तरह कन्धे में लपेट लिया। खोखला चश्मा दिनों पहले मार-पीट में न जाने कहाँ चला गया था! देर तक सोचता रहा। विधान न बना। अन्त में हार मान ली। वैसे ही बोलना शुरू किया। दोनों बच्चों को निकट ला, हाथ जुड़ा के बिठला दिया।

'मुलक मुलक मा गरीबी है। भुखमरी है। जमीन जिनके लगे ज्यादा है, दूसरे गरीबन को दिहो। जर-जमीन सब परमेसर की है। हवा-पानी परमेसर की है। बाबा अपने ताईं नाहिं आवत हैं। हाथ जोरि पाँव परि के कहत हैं। दे श्रो जमीन धना-दवा द श्रो!

दोनों बच्चे अवाक् हाथ जोड़े बैठ थे। सब देख सुन रहे थे। पर समझ में कुछ आ न पाता। पिटाई के डर से दम साथ बैठ थे—हँसी रोके। इतने में खलिहान से नानी लौट आई। दरवाजे पर खड़ी की खड़ी देखती रह गई।

'सुनत नहिं बड़की माई! बाबा आवत हैं। हाथ जोरि के बैठो।' धीरू ने धीरे से मुनक कर कहा। बुढ़िया भी ठगी-ठगी सी सच ही हाथ जोड़कर बैठ गई।

' मुलक मुलक मा चक्कर काटि के आवत हैं।' उसी रफ्तार से बिरजू कहता रहा— 'दे श्रो! नहीं तो लड़ाई होई! मारा मारि होई! बाबा जुगत दस के कहत हैं। जिनके लगे जौन है दे श्रो। बाबा की झोली भरि देश्रो! पाँच पूत सोहते हैं। छठा एक हमहिं मान लिहो। हमार हिस्सा हमें दश्रो। दे श्रो माँ! बोल-बोल रे छोरे तू का देत है! छोरी तू का देत है! माई! बोल रि माई तू का

देत है ! बाबा आत हैं। 'जा त है

बिरजू की आवाज लड़खड़ा आई। स्वर टूट गया। अपनी टूटी हथेली अपने आग पसार दी और अचेत होकर गिर पड़ा।

बिरजू बिरजू ! ' बुढ़िया भाई उसकी ओर लपकी— का होई गया बिरजू ! जे का कहात है ! गला भर आया बुढ़िया का— 'हमरे लग पांच पून नाहि। एको तू ही है। तू ही ! सब तोर है। ये हि गुन्डी कमबन जौन चाहत है ल जाया। सब ल जाओ बिरजू ! सब ल ब !

पर बिरजू ने न सुना। न दखा। सदा के रीत हाथ इस बार भी रीत थ। बुढ़िया सुबक-सुबक कर रोती रही। बार-बार उस टूटी हथेली को उलट-पलट कर देखती रही। चूमती रही।

नाहि नाहि बिरजू नाहि ! उसन ओस स भीगी गीली माटी मुट्ठी भर जमीन से उठाई। उस रीती टूटी हथेली में रख दी और माथा टिका दिया। बिरजू !'

पर दूसरी ओर से कोई आवाज न आई।

आदमी जमाने का

•

पूरे तीस वर्ष की सरकारी नौकरी के बाद सरकारी तौर पर बेकार घोषित होकर यानी कि सन्यास-आश्रम में प्रविष्ट होकर बाल बच्चों की छोटी बटालियन के साथ गांव लौटा तो घुग्घू बाबू के दर्शन सबसे पहले हुए। उन्होंने पहले ही पत्र भेज कर सूचित कर दिया था कि मैं उनका पुराना जिगरी दोस्त हूँ परदेश से घर लौट रहा हूँ और उनकी दास-सेवा के बुरे भले हर काम में हर तरह की सहूलियत में साथ देने का वादा कर चुका हूँ—अतः वे मेरे स्वागत में खड़े रहेंगे। यही हुआ भी। प्रारम्भिक पाठशाला के आठ-दस अबोध बच्चों को लिए आगे में कोई फटा पुराना झण्डा लटकाए बस के अड्डे पर बैठे थे। छोटे-मोटे हाथ हवा में उछालते हुए फटे बांस की तरह गला फाड़ते हुए—मिसिर जी जिन्दाबाद का गगनभेदी नारा लगाते हुए उन्हें देखा तो हैरान रह गया।

हृदय गद्गद् हो उठा। पलकें गीली हो आईं। बढ़कर उन्होंने मुझे अपने सीने से लगा लिया। मेरे दोनों घुटनों को अपने सीने में कसकर जकड़े थे—जैसे बच्चा मचल रहा हो। सम्भवतः इससे ऊपर वे पहुंच भी

तो कहाँ सकते थे।

मैं कोई राजनेता नहीं, विज्ञान शास्त्र-वेत्ता नहीं, वनस्पति विज्ञान का एक साधारण-सा गरीब अध्यापक। फिर घुग्घू बाबू की यह दरिया दिली नहीं तो और क्या थी।

लम्बे सफर की लम्बी थकान के कारण लम्बा लेटा था। कुछ बहुत जरूरी कामों में मन उलझा था। तभी गाँव गिराम के आठ-दस 'भले' आदमी मुझे घेर कर आ खड़े हुए।

मन मार कर उठना पड़ा। श्रीमतीजी से चाय बनाने को कहा। गरम चाय से जली जीभ की नोक सिसियाकर इधर उधर सरकाते हुए सब सज्जनों की अब तक भिंची तालू पर चिपकी जुबान अब आटोमेटिक घड़ी की तरह चलने लगी—

—घुग्घू बाबू से परमार्थ इलाका चमक उठा मिसिरा जी। गधेरे का पानी रोक कर श्रमदान से सागर बना डाला। पूरा पचास हाथ लम्बा यही कोई चालीस हाथ चौड़ा—तलाऊ समन्दर है! समन्दर! भैंस भी डूब जाती है। ऊधमी बच्चों को उधर जाने की मनाही है। बड़े औरत जात भी उधर जाने से डरती है। सूरज ढलने तक जाकर ही लौट आना है।

—क्या रतन पाठशाला भी इन्हीं की बदौलत है! इन्हीं की! एक ने उनकी गद्दी पर कहा— नहीं तो सरकार भला कहाँ पूछे! अफसर हाकिम से लड़ झगड़कर रातों रात इमारत खड़ी कर दी। पर मुई दीवार बरसात में पहले ही लौट गई। भगवान का शुकर समझो। अगर जो कहीं भरपूर बरसात में गिरती तो राम जाने क्या होता। गाँव में एक भी बच्चा आज के लिए नहीं बचता। केवल हरदासवा की एक बाल सिर मुंडी लड़की को चोट आई—बस टाँग टूटी। उस रोज ठगा समय हस्पताल में लाए। घुग्घू बाबू वहाँ तो जा न पाए लेकिन अगले अपने खोट करम के कारण जब बच्ची नहीं मर गई तो अपने कन्धे पर उठाकर सड़क पार मरघट श्मशान तक उसे पहुँचाया। अपने हाथों

आदमी जमाने का



पूरे तीस वर्ष की सरकारी नौकरी के बाद सरकारी तौर पर बेकार स्थापित होकर यानी कि सन्यास-आश्रम में प्रविष्ट होकर बाल बच्चों की छोटी बटालियन के साथ गांव लौटा तो घुग्घू बाबू के दर्शन सबसे पहले हुए। उन्होंने पहले ही पत्र भेज कर सूचित कर दिया था चूंकि मैं उनका पुराना जिगरी दोस्त हूं परदेश से घर लौट रहा हूं और उनकी देश-सेवा के बुरे भले हर काम में हर तरह का तहदिल से साथ देने का वादा कर चुका हूं—अतः वे मेरे स्वागत में खड़े रहेंगे। यही हुआ भी। प्रारम्भिक पाठशाला के आठ-दस अबोध बच्चों को लिए हाथों में कोई फटा-पुराना झण्डा लटकाए बस के अड्डे पर खड़े थे। छोटे-मोटे हाथ हवा में उछालते हुए फटे बांस की तरह गला फाड़ते हुए—'मिसिर जी जिन्दाबाद' का गगनभेदी नारा लगाते हुए उन्हें देखा तो हैरान रह गया।

हृदय गद्‌गद हो उठा। पलकें गीली हो आईं। कसकर उन्होंने मुझे अपने सीने से लगा लिया। मेरे दोनों घुटनों को अपने सीने में कसकर जकड़े थे—जैसे बच्चा मचल रहा हो। सम्भवतः इससे ऊपर व पहुंच भी

तो नहीं सकते थे।

मैं कोई राजनेता नहीं, विधान शास्त्र-वेत्ता नहीं, वनस्पति विज्ञान का एक साधारण-सा गरीब अध्यापक। फिर घुग्घू बाबू की यह दरिया दिली नहीं तो और क्या थी।

लम्बे सफर की लम्बी थकान के कारण लम्बा लेटा था। कुछ बहुत जरूरी कामों में मन उलझा था। तभी गाँव गिराम के आठ-दस भले आदमी उन्हें घर पर आ खड़े हुए।

मन मार कर उठना पड़ा। श्रीमतीजी से चाय बनाने को कहा। गरम चाय में जली जीभ की नोक खिसियाकर इधर-उधर सरकाते हुए सब सुनता भी रहा। तब तक किसी तालू पर चिपकी जुबान अब आटोमेटिक चर्खी की तरह चलने लगी—

—घुग्घू बाबू के परसाल इलाका चमक उठा सिसिरा का। गधेरे का पानी रुकवा कर श्रम-दान से सागर बना डाला। पूरा पचास हाथ लम्बा, यहाँ कोई च्यालीस हाथ चौड़ा—अथाऊ समन्दर है! समन्दर! भैंस भी डूब जाती है। ऊधमी बच्चों को उधर जाने की मनाही है। बड़े लोग तक भी उधर जाने से डरते हैं। घुग्घे पन्त तक जाकर ही लौट आता है।

—क्या रतन पाठशाला भी इन्हीं की बदौलत है? इन्हीं की! एक ने गरदन उठा कर कहा— नहीं तो सरकार भला कहाँ पूछे! अफसर हाकिम मर मगज कर रातों-रात इमारत खड़ी कर दी। पर मुई दीवार बरसात में पहले ही लोट गई। भगवान का शुकर समझो। अगर जो कहीं भरपूर बरसात में गिरती तो राम जाने क्या होता। गाँव में एक भी बच्चा चीज के लिए नहीं बचता। बेचारे हरिरामवा की एक मात्र छिन-चढ़ी लड़की को चोट आई—बेचारी टाँग टूटी। उस साल उसी समय हस्पताल में गए। घुग्घू बाबू वहाँ तो जा न पाए, लेकिन अचानक अपने ढाई बरस के बालक जब बची नहीं, मर गई तो अपने कन्धे पर उठाकर सड़क दूर मसान इहान ही मसान तक उसे पहुँचाया। अपने हाथों

आग दी। अपनी कोख की कन्या की तरह जलाया।

—जो कोई गाव म बीमार होता है वद के साथ-साथ ब्राह्मण भी बुला लाते हैं—घुग्घू बाबू! साढ़े तीन हाथ कपड़ा हर घड़ी घर धर धरा रहता है। कौन जाने कब जरूरत आ टपके। आखिर दाने सयाने हैं न!

—अखबार-कागज वाले कहते हैं कि सरम-दान से सवा तीन मील लम्बी सड़क देग म पहले-पहल इन्होंने ही बनवाई थी—मिसिरा जी! आप तो दो मील वाले हैं। देखते होंगे। कहते हैं उससे खुश होकर सरकार-दरबार ने इलाके की भलाई के लिए हजारो रुपए की मदद दी। उससे घुग्घू बाब ने या लम्बा चौड़ा बगीचा नौ पानी का डिग्गमा (पत्थर की छत से छही—चारो ओर से बन्द पक्की बावड़िया) और एक गाधी पचायत घर का निरमान किया।

घुग्घू बाबू के बारे म जब तब कुछ सुनता रहता था लकिन रचना त्मक काय म विनोबा जी की तरह इतनी गहरी पठ होगी इसका अनु मान न था। पाठशाला की इमारत गिर गई। —इसम उन बेचारो का क्या दोष! साधना की कमी होगी! बड-बड हाथी-छाप बाध बनाने की उनकी क्या वो! इतना भी किया तो कम है! ढोर डगरा को तो पानी मिल ही जाता होगा! बगीचा। पचायत घर। मन ही मन एक गरीब अध्यापक न घुग्घू बाबू जसे परोपकारी पुरुष को प्रणाम किया।

एक के बाद एक पच वर्षीय योजना के आंकड़ों की कागजी घुड दौड़ की तरह बातों का सिलसिला भी चलता रहा। सबक कहने का तात्पर्य यही था कि—चूकि अब मैं बाहर की विघ्न-बाधाओं से बच कर परमसर और रल की कृपा से सकुशल सुरक्षित घर लौटा हूं इसलिए मुझे उनके काम म सहयोग देकर पुण्य का भागी बनना चाहिए। यह मेरा सौभाग्य है कि मैं उनका बचपन का मित्र और अब पड़ोसी हूं।

बातों के इसी क्रम म आगे मालूम हुआ कि कल जो इलाके के महा मान्य डिप्टी कमिश्नर—श्री जमील साहब दौरे पर पधारने वाले हैं उन्होंने काय क्रम में बगीचा पचायत घर आदि का निरीक्षण भी रखा

है। जमीन साहब चूंकि मेरे पुराने सहपाठी हैं। अभी तक व मुझे भूले नहीं हैं—पन व हर घड़ी मुझे अपने साथ रखेंगे। इसलिए मेरा कर्तव्य है कि पप्पू बाबू की सहायता कर गाव की तरक्की की दो बातें उनके कानों तक भी पहुंचाऊ।

मुझ क्या आपत्ति!

व चले गए तो मैं श्रीमती जी से बोला कि उनके सामने बठ इस ठूठ किनारी-बीड़ से तो पप्पू बाबू हजार भले हैं। इलाका रोशन कर लिया। अपना नाम रोशन कर दिया। क्या है! अपना पेट तो हर कोई भरता है।

सांझ के समय हम इन्हीं बातों में तल्लीन थे कि देखा—पप्पू बाबू घबराए हुए वतहाशा भाग आ रहे हैं दुम-दबा खरगोश की तरह। जमीन पर घसिटता हुआ पाजामा लेकर लम्बे कानों पर लटकी टोपी सभाल कर।

मिसिरों जी मैं आप ही के पास आया हू। अपनी पुरानी आदत के अनुसार नाक से बोलते हुए उन्होंने कहा। यों ही चार-छ बार दो अंगुलियों के बीच नाक की नोक झटके से दबाकर बार-बार साफ की सी! सी! कर। फिर मेरा मुह ताकते रहे।

मसकराकर मैं स्वागत के लिए आगे बढ़ा तो—'नहीं! नहीं! हम गोबर के कीड़ों के लिए इतनी-सी जगह बहुत है—मिसिरों जी!" नाक पर अकारण दो-तीन बार फिर हाथ फेरा और पालथी मार कर फर्श पर ही गड़ गए की तरह जम गए। मेरे बराबर मना करने पर भी माने नहीं।

उन्होंने मुझे सूचित किया कि मैं उनका गहरा दोस्त हू। व मुझे अपना समझते हैं। इसी कारण मुझसे कुछ निजी बातें करना चाहते हैं। पहले बच्चों को बाहर भेज दिया जाए।

किसी तरह नटखट बच्चों को बाहर धकेला तो उन्होंने इधर उधर देखा—श्रीमती जी की ओर तिरछे अगूठे से इशारा किया। व भी बाहर

चली गई। फिर दरवाजे बन्द करने का आदेश हुआ, वह भी पूरा किया। अन्त में बोले—कुण्डा मजबूती से चढ़ा दिया जाय और लालटेन बुझा दी जाय। क्योंकि उनके स्वर्गीय दादा जी कहा करते थे कि दीवार के भी कान होते हैं और कम्बख्त दरवाजे भी देखा करते हैं।

यह भी यन्त्र की तरह हुआ तो हुक्म हुआ कि अब मैं बैठ जाऊं।

कुर्सी पर मैं बैठ गया। उन्होंने अंधेरे में मेरे पांव टटोले। जिन्हें मैंने पीछे हटा लिया। पास ही कुर्सी के नीचे पांवों के पास मेरे बरसाती लम्बे गम-बूट पड़े थे। वे आपे से बाहर थे। उन्हीं पर माथा टिकाए, अधीर होकर फूट पड़े।

बोले—मैं उनका एकमात्र मित्र हूं। वे गले गले तक डूब गए हैं। मेरा परम धर्म है कि मैं उन्हें तिनके का सहारा दूं। सुदामा श्रीकृष्ण के दरबार में बिना मुट्ठी भर चावल लिये रीते हाथ आया है। आज प्राणों की भीख मांग रहा है।

मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। हजार बार मेरे पूछने पर भी वे कुछ बतलाने को राजी न थे। केवल बरबस आंसू दुलकाए जा रहे थे।

मैं उठकर उन्हें चरण पर से उठाने लगा कि उन्होंने कसकर मेरे दोनों पांव जमूरे की तरह जकड़ लिए। रुंधे कण्ठ से बोले कि मैं वचन दूं कि मैं उनकी बात मानूंगा और किसी से कुछ कहूंगा नहीं।

गोपनीयता के लिए मुझ से मेरे दुधमुंहे बच्चों की, रुग्णा धर्म-पत्नी की, दिवंगत पूज्य पिताजी की और मेरे अनेकों इष्ट मित्रों की जिनसे उनका कोई लेन-देन न था बार बार कसम दिलाकर उन्होंने कहना प्रारम्भ किया—

जमील साहब आपके दोस्त हैं न ?

जी हां।

'तो कल वे हमारे ग्राम-सभा के सहकारी-बगीचे में आएंगे न ?

मैंने सिर हिलाया।

तो आपको वे अपने साथ रखेंगे न ?

शायद !

तो आप चुप रहियेगा। बाकी हम देख लेंगे।

क्या ? क्या ? अनायास मैंने उनकी ओर देखा।

बस आप चुप रहिए। अधिक पूछें तो गांव की तरक्की के दो शब्द कहिए। नहीं तो होंठ सिए बैठे रहिए। बस, बाकी हम खुद देख लेंगे।

'बुधू बाबू !' परेशान होकर मैंने कहा— अपना दिमाग कोरा है। बात समझा नहीं।—आखिर आप क्या देख लेने को कहते हैं ! बात क्या है !

'बात भी कुछ हुआ करती है मिसिरों जी ! आप भी निरे नादां हैं !' उन्होंने मुझ नासमझ की ओर देखा। कुछ ठहर कर तनिक दूसरे स्वर में बोले—'क्या कहूं ! किसम कहूं !—इन दो-पाए मूरख मुर्गा का हाल। एक हाथ से उन्होंने अपना बन्दर का सा दो अंगुल चौड़ा माथा थामा— बस ये मेरे प्राणों पर उतर आए हैं मिसिरों जी ! मेरी खाल खींचने को आमादा हैं। इन्होंने मेरी तबाही रच दी है। कहीं का भी नहीं रख छोड़ा। बतलाइए। चुप क्यों हैं ! आप ही बतलाइए न ! मैं क्या करूं ! कहो तो जहर खाकर कूच कर दूं !

मैं हैरत में उनकी ओर तकता रहा। भला मैं कैसे कहने लगा कि वे जहर खाकर कूच कर जाएं या न करें ! आखिर क्या हो पड़ा ऐसा ! मैंने जिज्ञासा से फिर प्रश्न किया।

बात भी कुछ हुआ करती है मिसिरों जी ! मुस्काकर उन्होंने वही पुराना भरत-वाक्य फिर दुहराया इस बार— आप दरस तो रहे हैं ! कितनी मुसीबत में हूं ! फिर मुझसे पूछ कर जानबूझ कर मेरी दोनों आंखों में अंगुलियां डाल रहे हैं।

मुझसे कुछ कहते न बना। उनकी ओर मैं ताकता रहा।

वे धीरे-से मुस्काए हाथ नचाकर। अपना दीर्घ-कालीन रामायण सारा का समाधान में उन्होंने प्रस्तुत किया। जिसका संक्षिप्त सार यह

है कि उन्होंने सहकारी फलोद्यान के लिए अपनी जमीन दी। अपना सवस्व लुटाया लेकिन गांव वालों ने सब स्वाह कर डाला। उनके विरुद्ध सबने षड्यन्त्र रचा—अकेला समझ कर। और उनका मेरे अलावा अब कोई भी नहीं है।

कितने पेड़ लगवाए थे ?

यह भी कोई पूछने की बात है मिसिरजी ! नाग-पंचमी के दिन परमेसर का नाम लेकर पहले सवा इक्कीस पेड़ लगाए—लेकिन मरी मनोहर वाल्मिकी न मुए रावरा ने चौपट कर दी। कह दिया—मरी गायें ने खाए थे। मैंने उखेड़ कर किसी ओर को बेच लिए थे।—वे क्या जानें ! आगे फिर कौन साहस करता ! फलों के पौधा को यों नुचवाने में भगवान भी क्या कहते ! इसलिए चुप रहा।

उन्होंने आगे बतलाया कि उनकी जगह मैं होता तो क्या करता ! लाख दुष्टों के बीच अकेला भला आदमी कर ही क्या सकता है !

तो अब क्या होगा ? आपने तो कहा था—पांच सौ पेड़ लग गए हैं ! मेरे ओठ सूख आए।

उन्होंने सोचते हुए कहा कि वे इसीलिए तो मेरे पास आए हैं। अगर मैं कहूं तो वे पत्नी की तीन चार सौ टहनियां तुड़वालें और जमीन पर गाड़ दें। यह काम तो आसानी से निकल सकता है लेकिन परेशानी असुरी कुछ और है।

सो क्या ?

मेरे अनेक बार पूछने पर उन्होंने बतलाया कि पानी की डिग्गियों में पानी नहीं आता।

'तो बनाई क्यों थीं ?

उन्होंने बतलाया कि प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए। एक बार पानी के सम्बन्ध में गांव वालों से झगड़ते समय उन्होंने कहा था कि यदि गांव में दो डिग्गियां न खड़ी कर दें तो अपने बाप की औलाद नहीं। सो अपने बाप की औलाद बनने के लिए। आगे यार अगर मैं कहूं तो वे उनमें

रात को ही बाल्टियों से पानी भरवा लेंगे। गांधी पंचायत घर से अपने बच्चों को अभी उठा लेंगे। भैंस आंगन में बंधी रहने देंगे। यदि मैं कहूं तो वे साहब से कह देंगे कि ग्राम सभा भी सहकारी भंग है। गरीब बच्चों को मुफ्त दूध बंटता है।

ये कहते रहे लेकिन मेरे मन में नाना प्रकार के नाग लोटते रहे। मैंने शंका उठाई— सुना है सुबह इन्स्पेक्शन करेंगे। कहीं भी पहचाना गए तो!

नहीं नहीं। उन्होंने [illegible] में सिर हिलाया— 'साहब कल सुबह के बजाय रात को ही तशरीफ लाएंगे। वे सब ठीक कर लेंगे। उन्होंने पानी के [illegible] नहीं देखे हैं।

यह सुनकर मेरा मन कांप गया। इस सबके लिए मैं तैयार न था।

यह गौरव पाया अपने मन का नहीं पचा पाया! अपने सीने पर पत्थर रख कर किसी तरह कहा— अच्छा है आप कमिश्नर साहब के सामने अपना अपराध मान लें। बाकी [illegible] मैं निपटा दूंगा और [illegible]।

'अपराध!' [illegible] उन्होंने [illegible]। मेरा अधूरा वाक्य बीच में ही काट डाला— ये आप क्या कह रहे हैं मिसिरजी! अपनी छाती उन्होंने ठोकी— आपका भेजा फिर गया है। मुझ जैसे आदमी से ऐसा कह कर आपने [illegible] की मूरत के मुंह पर कालिख पोत डाला है। उनका स्वर भर आया।

मैं चुप था। वे [illegible] फिर बोले— इस अपराध से कहा मिसिरजी! यह तो [illegible] है। [illegible] है। फिर आप सोचिए—मैंने देश के लिए कितना कुछ नहीं किया! फिर पंचायत घर में मैंने सिर छिपा लिया तो कौन-सा अपराध किया! पंचायत भवन का [illegible] तो कौन-सा अपराध हुआ! [illegible] पानी भर ली। [illegible] मैंने [illegible] का सामना [illegible] किया तो कौन-सा अपराध कर डाला!'

लेकिन घुग्घू बाबू मेरा मन इस सब के लिए तयार नहीं।' कहकर मैं दरवाजे की ओर लपका। वे बाज की तरह मेरी ओर झपटे। पर उससे पहले ही मैं किवाड़ खोलकर निकल गया।

सुना कुछ देर तक वे भौचक्के आंखें फाड़े देखते रहे। फिर बड़बड़ाते हुए गाली देते हुए चले गए। सुना अपने आंगन की मुंडर पर खड़े हाथ हिला हिला कर कहते थे—मैंने देश में रण्डियों का व्यापार किया। उन्होंने अपनी आंखों से देखा। मैं दुराचारी हूं। दगाबाज हूं। उचक्का हूं। अब गांव में क्या आया गांव तबाह हो गया!

मैंने सुनी की अनसुनी कर दी।

रात को बिछौने पर लेटा ही था कि देखता हूं—दरवाजे पर दरजन भर बच्चों के साथ एक महिला खड़ी हैं—कह रही हैं—कि वे मेरी भाभी हैं। मुझे वे अपने बड़े भाई से ज्यादा समझती हैं। लेकिन मैं उनकी मांग का सिंदूर पोंछने पर तुला हूं। यदि वे विधवा हो गईं और मेरे बड़े भाई साहब गुजर गए तो मुझ ही उनके घर का भार उठाना होगा। चार जवान कन्याएं देहरी पर बैठी हैं—दहेज दामाद सब मेरे मत्थे!

मैं अपने मां-बाप का इकलौता हूं। मेरे कोई छोटे-बड़े भाई नहीं। इस विरन्तन सत्य के बाद भी मुझे कहना पड़ा कि अपने बड़े भाई साहब से मुझे पूरी हमदर्दी है। और मैं अपनी भाभी का सिन्दूर पोंछना नहीं चाहता।

मेरे इस कथन के बावजूद भी मेरी भाभी कहती रहीं कि अपने बड़े भाई साहब पर मैंने न जाने कौन-सा टोना चला दिया है! न जाने क्या खिला दिया है! जब से वे मर घर से गए हैं आपे से बाहर हैं। पागलों का जस हाल कर रहे हैं। जहर की शीशी बगल में दबाए जंगल की ओर भाग रहे थे। वह तो लोगों ने समय पर पकड़ लिया। नहीं तो परमेसर जाने क्या हाल होता!

मेरी भाभी रोने लगीं। मेरे दरजन भर भतीजे भतीजियां उनके सुर

में मुंह मिलाकर रोने लगे! मेरे होश हिरन हो गए। घर भर के लोग जग पड़े। श्रीमती जी अपने कपाल पर दुहत्थी मार कर बरस पड़ीं कि मैं कितना हृदयहीन हूं! अकारण इन गरीब बच्चा को अपने घर पर बुला कर बुरा कर रहा हूं—जो उनसे देखा नहीं जाता।

अपनी भाभी का रोना किसी तरह शांत किया। बच्चा को चुप किया।

'आखिर आप क्या चाहते हैं?' हताश होकर अपनी गंजी खोपड़ी का पसीना पोंछते हुए मैंने पूछा।

यह तो मुझे ही मालूम होगा। हिचकियां भरते हुए उन्होंने कहा कि उन्हें साफ-साफ मालूम नहीं। वे तो इतना ही कहते हैं कि उनका छोटा भाई होते हुए भी मैं उनकी आज्ञा नहीं मानता। वे तो मेरा भला चाहते हैं। लेकिन कृतघ्नता मेरी ही घाट से है। वे तो इतना ही कहते हैं कि मैं बल साहब के साथ रहूं। चुप रहूं। वे जो पूछें—हां 'ना' में ही उनका उत्तर दूं बस! इस बात का वचन वे पहले भी चिट्ठी भेज कर ले चुके हैं कि उनका मैं हर तरह से साथ निभाऊंगा। सो अब मौके पर प्रतिज्ञा भंग कर मैं मुकर रहा हूं।

क्या करता! इस आधी रात में यह तमाशा! पिण्ड छुड़ाने के लिए मैंने 'हां' कह डाला और विश्राम किया।

सुबह की पहली ही दस्तक दरवाजे पर।

अब पुष्पू बाबू सामने खड़े थे। गिलहरी की तरह मेरे पांवों पर लोटते हुए बोले—कि मैंने इस कलयुग में भी कृष्ण-सुदामा की मित्रता निभाई है। मैं उनका पूर्व जनम का सगा भाई हूं अब।

कुछ देर बैठ गये। जाते समय वे कह गए कि यदि मैं कहूं तो इसी खुशी में साहब का खाना मेरे ही घर पर बनेगा। क्योंकि वे (साहब) मेरे पुराने महमाठी हैं। कचहरी में उन्होंने साहब को कहला भेजा है। और मेरे कहने पर स्वयं उन्हें (पुष्पू बाबू को) भी मेरे घर पर भोजन पाने में आपत्ति न होगी।

मैं उनकी सूरत देखता रहा।

दोपहर ढल गई। श्रीमती जी भोजन तैयार किये ऊंघती रहीं। लेकिन साहब के आने के कोई भी आसार दीखते न थे।

मालूम हुआ है कि साहब का गधा जमा सीधा घोड़ा जिन्दगी में पहली बार खूंटा तुड़ाकर जंगल भाग गया है। डिप्टी कलक्टर पटवारी पेशकार तहसीलदार सब जंगल का पत्ता पत्ता छान रहे हैं। अब वे सब सांझ को ही पधारेंगे।

सांझ ढले वे आये तो घुग्घू बाबू ने गांव भर के बच्चों की कवायद शुरू करवा डाली—कमिश्नर साहब की जय! गांधी जी की जय! नेता की जय! के गूंजते नारों से सूनी घाटियां गुलजार हो गई। जगल के जानवर बिदकने लगे। तिरंगे द्वार सजी झण्डियां! साहब को बुरी तरह फूलों से लाद दिया गया था।

इतना स्वागत-सत्कार देखकर साहब हैरत में थे। निरीक्षण के समय वे विभोर होकर चारों ओर देखने लगे। जैसे छोना नाव पर चढ़ कर पानी की लहरों की ओर कौतूहल से निहार रहा हो!

लाल फीता काटते हुए बोले— मिस्टर मिश्रा आप तो बाटॉनी पढ़े हैं। बतलाइए जरा ये पौधे कब फल देंगे! उन्होंने टिकली पत्ती सहलाई।

घुग्घू बाबू के प्राण कांप आए। कहीं पौधा जड़ से ही उखड़ जाता तो!

साहब ने मेरी ओर देखा तो कहना पड़ा— यही चौथे-पांचवें साल।

इतने ही पौधे सब लगाए तो मिस्टर मिश्रा क्या हमारे पहाड़ स्विट्जरलैंड नहीं बन सकते! फॉरेन एक्स-चेन्ज की प्राब्लेम दूर नहीं हो सकती! अन-एम्प्लायमेण्ट का प्राबलम साल्व नहीं हो सकता?

मैंने मौन सहमति दी।

बगीचे के दो द्वार थे। उत्तर का दयानन्द-द्वार और दक्षिण का

शिवानन्द द्वार।

कमिश्नर साहब ने इसमें संशोधन रखा। ग्राम—गाँव का उत्तर द्वार और साउथ का दक्षिण द्वार होना चाहिए। इससे नेशनल इन्टिग्रेशन को मजबूती मिलती है। क्या मिथ्या!

मैं चुप सिर हिलाता रहा। बाप की कसम जो खा चुका था कि जुबान खोलूँगा नहीं।

शंखनाद के साथ डिब्बियों की टोंटियाँ खुलीं। छल छल पानी आया। कमिश्नर साहब मुग्ध भाव से देखते रहे। ऐसा ही गाँव में सब साथ पानी की टोंटियाँ डिब्बियाँ! लगन कितनी तरक्की पर है! यह सब उनकी 'पाइप इरीगेशन प्लान' की वजह से है। साहब अपने आप गुनगुनाते रहे। बड़बड़ाते रहे। घूमते रहे। झूमते रहे।

गांधी पंचायत घर का उद्घाटन दीपक जलाकर हुआ। बच्चों ने मास्टर जी के साथ रोज की पाठशाला की प्रार्थना दुहराई—उठ जाग मुसाफिर भोर भई।

इस पर दूर खड़े किसी कम अक्ल नासमझ ने एतराज किया कि यह रात का समय है!

इस पर हँसते हुए साहब बोले— नहीं! नहीं! यही चलेगा! यहीं! 'उठ जाग मुसाफिर' नाइट-सॉंग नहीं है। यह तो नेशनल अवेकनिंग है! अरे!

फिर वन्देमातरम् का गम्भीर गीत भी गूँजा।

भजन की स्कीम साहब को बेहद पसन्द आई। प्रसन्न होकर उन्होंने गरीब बच्चों को दूध बाँटा और नेशनल हैल्थ के बारे में भी कहा।

लोग खुश थे। सब तालियाँ पीट रहे थे। लेकिन मेरा माथा घूमा जा रहा था। मुझसे खड़ा रहा न जा सका। मैं साहब से क्षमा याचना कर घर आकर किवाड़ मूँद कर लेट गया।

मालूम हुआ कि रात को लगातार घंटा व बोतलों के बाद करीब तीन घण्टे तक भारत का शोर बजता रहा। सबेरे तक हँस गाँव

के गरीब लोग भीगते रहे। पर पल्ले कुछ न पड़ा। केवल ममता के मुह की ओर ताकते रहे। सबने ताली पीटी तो चट चट् ताली पीट देते।

घुग्घू बाबू को साहब ने जमाने का आदमी बतलाया और उसके आदर्श चरित्र के अनुकरण की बच्चों को विशेष रूप से सलाह दी और कहा कि आने वाली पीढ़ियां उनका नाम श्रद्धा से लेंगी। क्योंकि मर कर भी जो मरते नहीं अमर रहते हैं उन बुनियादी सच्चे जन-सेवकों म से है वे।

फिर घुग्घू बाबू का भाषण हुआ। उन्होंने कमिश्नर साहब को देश के प्रमुख आदर्श प्रशासकों की श्रेणी में रखा। और उनकी कार्य-कुशलता अनुकरणीय बतलाई। उनके कर्मठ जीवन से प्रेरणा लेने की बात कही। फिर आंखें मूद कर गांव की गरीबी का वर्णन किया। इतना मर्मस्पर्शी करुण कि साहब की पलकें भीग आई। घुग्घू बाबू ने अन्त म दोनों हाथ पसार कर सरकारी सहायता के लिए झोली फैला दी।

दूसरे दिन उठा नहीं कि श्रीमती जी ने झकझोरा। कहा कि मैं हमेशा का लापरवाह हू। उनकी बात सुनता नहीं। सुना घुग्घू बाबू की स्कीमों के लिए साहब ने पन्द्रह हजार की सहायता दिलवाने का वचन दिया है। घुग्घू बाबू क लड़के को नौकरी दिलाने का आश्वासन भी मिला है। सुना जाते समय साहब नकद इनाम म सौ रुपये उनके हाथ म धर गए। चारों ओर घुग्घू बाबू की वाहवाही हो रही है। और मैंने तो जिन्दगी यों ही बेकार की। व्यर्थ का वनस्पति विज्ञान लेकर न जाने कहां कहां घास खोदता रहा!

स्वभाव

•

हंसी के साथ एक मन्थरगी-सी शरारतभरी चीख फूटी ।

"अरि क्या हुआ मिन्नी ? क्या हुआ ?" बिछौने पर लेटी बीमार मालती ने कराहते हुए करवट ली । फिर धूप से बचने की तरह पांचों अंगुलियां कतार में समानान्तर माथे पर लगाते हुए अपनी धुंधली निगाहों से दूर दरवाजे की ओर देखने की चेष्टा की । स्पष्ट कुछ दीखा नहीं । केवल कुछ आहट-सी आई । फिर मुंह भींचा दबी हंसी । फिर गुनगुने मिले मीठी हंसी ओर ।

तभी चार-छ दरवाजे की भांति पट् से बाहर के किवाड़ बन्द हुए । जापानी का काठ का जालीदार दरवाजा थरथराता हुआ लौट आया ।

और तभी मिन्नी हांफती हुई सामने आ खड़ी हुई । बाल हवा में उड़े इधर उधर बिखरे बादल की तरह उलझे । लापरवाही से पहने वस्त्र अस्त-व्यस्त । दोनों के गाल पे लालिमा छा गई । [illegible] सिन्दूरी चेहरा । [illegible] जालीदार दुपट्टे से मुंह पोंछती हुई [illegible] कर बोली— "कहना बोल चुके हैं भाभी ?" उसके अधूरे पड़ गए ।

सीना वह वेग से उठने गिरने लगा। झीनी चुनरिया मफलर की तरह गले पर डाल कर उसके नीचे झुके दोनों पल्ले खींचकर भाभी से तरेरकर देखा—'सच्ची बौत बुरे हैं मामा!' दरवाजे तक दन जो गई कि निगोड़ी घड़ी रह गई बस लाट साहब की तरह हाथ आगे बढ़ा दिया। अकड़कर यों एठकर बोले—'बुड़न घड़ी बाँध!' बाँधने लगी तो घड़ी के साथ साथ हाथ भी पकड़ लिया। फिर सामने की तरफ झुकी चोटी हथेली पर धर कर सूंघने लगे। मैंने कहा—सूंघते क्या हो हुजूर तुम्हारा चमेली का तेल नहा लगाया! तो चुप झूठा कहकर गाल पर एक थपत जमा दी। फिर नागन कहकर मरी चोटी पकड़कर जोर-जोर से खींचने लगे। देखो कहीं बाल उतर जाते तो!!!

भाभी की बुझी पलकें बड़ी हो आई। जैसे नन्हा किनारा बाढ़ के जल से अनायास विस्तार पा गया हो।

लेकिन मिन्नी उसी गति से बहती चली गई— मैंने कहा तो!' अंगुली पर तेजी से छल्ले की तरह दुपट्टा का किनारा लपेटती उकेरती बोली—कहा तो कहने लगे मिसरी बिना पूछ के भी बुरी न लगे है। क्या बट्टो! फिर बिना बात ही हो हो हंसने लगे। मैंने मुंह सिकोड़ कर गुस्से से देखा तो सच्ची भाभी—सवली सवली। बह कर चल गए। ऐसा न जाने कोई बात है! पर न भी अंगरेजी बोलते हैं!

उफनती-उबलती मिन्नी चली गई। भाभी देखती रही। सोचती रही। दो-चार अनबूझ शब्दों पर मन अनायास अटक आया—मांछी के कण्ठ में फंसी कटिया की तरह।

अभी पाख भी पूरा गुजरा न होगा कि इसी पहले मंगल की सांझ के बसत सीढ़ियों से हो हो-हल्ला मचाता हुआ जितेन आया था। नीचे आंगन पर से ही आवाज लगाता हुआ पुकार-पुकार कर कहने लगा था जैसे किसी बहरी को वियाबान वन में पुकार रहा हो— अरि मा मुन्नी हो! मुन्नी हो! देखो यह क्या पकड़ कर लाया हूं जंगल से!

तुम्हारे बनारस की कसम सब अब बस बेच कर सो जाओ। घर-बाहर का तुम्हारा काम करेगी। बरतन माँज आयगी। कपड़े उसे धोयगा। बुहारी लगायगी, आँगन पर। यह भाव स महरी का काम ठप्प! घट्ट से घूटकी बजाते हुए, उसने अपनी पुरानी आदत म अनुराग एव भाव संलिप्त दबाते हुए कहा था— ऐसी क्या है! गिलहरी है! है न!

विस्मय से मालती ने देखा—सच ही सामने गिलहरी खड़ा है। खिनन वाल पर खड़ा है—

म धा रिका भाभी न!

यह मत्या रिझाने के लिए मुड़ी तो भाभी महा नहीं वह घर, खिलखिलाकर मुस्करा भर दी। एक उड़ी उड़ी सी क्षणिक मुस्कान पतली लग मुग्ध इसाह होठों पर आकर होल स यों ही बिखर गई। फिर पर बुनने स्प्रिंग की तरह धीरे धीरे कोमल हो चली।

बन गई ! क्यो? भाभी ने घुघट म अपनी तर्ज स काली न्ची का राना दिखाया थोड़ी बाहर म कर दिया। फिर इत्मीनान पीछे लौट गई ताकि सामने भाभी भी बैठ सके। पर म बाबा आदम के जमाने का बिना हुक्म की बॉस की जगह प्लाइवुड की पाटी म ठुकी सब ही कुर्सी है जिसके सामने खिनन खड़ा है।

'इमा दिठान मनीचर को!' हलिम समीप से आवाज आयी।

पर खड़ी क्यों हो! बैठो भी न!' मालती ने कहा तो वह कभी रुठी सा तरह मिनिट भर होने स चारपाई की पतली-सी कोर की धीमा सी शुभ जगह घेरे बैठ गई।

पढ़ती कहाँ हो आजकल?

कहीं नाम न लाई—कुदरन्मर।

न्यालिन की दहेड़ी रज की आलीशान बच्चा जिसका तक हल्का कुर्सी म रखा था जिसके लगाव मरे पता नहा वह पन ठूँस तन म वह पदी नर भी ध्यान दाहिने हाथ म थाम थी। जिसमें एक मोरा गलबार दूसरी दो चार कोई उम्दा की ठो रे मो रे चीजें थी। ऊपर म बगरबार

के फटे जिल्द से ढकी एक किताब थी, स्याही और पेन्सिल के मिश्रित अक्षरों से हिन्दी अंग्रेजी में कुछ लिखा था। छुट्टियों में पढने के लिए लाई थी—क्योंकि भन जी ने छुट्टियां मिलते समय कहा जो था कि छात्राओं को हसी ठट्ठा में समय बरबाद नहीं करना चाहिए। सो समय बरबाद न करने के लिए ही वह बदरिया के बच्चे की तरह घसीट फिर रही थी। वसे एक बार भी उसने पन्ने पलटे नही तो क्या हुआ!

आज से पहले भी वह एक बार कभी यहा आई थी। तब वह शायद पासपोर्ट साइज की थी। लडकियां कितनी बडी हो जाती हैं एकदम!

मालती क्या कहे! एकाएक बोलने को कुछ सूझता न था। गर्मी की छुट्टियां में आई है तो!—कुछ सोचते हुए उसने सहानुभूति से कहा—'इम्तहान दे के आई होगी न! थकी थकाई!

' च्च म म ! मुह के सामने स मक्खी उडाने की तरह हाथ या ही झटके से हिलाता हुआ चट जितेन बोल उठा— थकने के बाद यह हाल है तो पता नहीं पहले क्या होगे? हरे राम! हाथ जोडते हुए एक गहरी सांस भरकर जितेन ने मिन्नी की ओर देखा— भाभी कहती थी कि इसका पेट चक्की है चक्की! हाथ भर ऊचा दर एक वक्त म हजमकर जाती है। ऊपर से घूंट भर पानी भी नहीं निगलती। सुना हमारे यहा इतना नही मिलेगा हां हो हो हो ! वह फिर मुह फमा के हसने लगा।

मिन्नी झेंप गई।

मालती ने अजीब-सा मह बनाया। जसे वह कहना चाहती थी कि उमे एसी बात नही कहनी चाहिए थी।

बात सम्हालता हुआ चुस्कियां लेकर जितेन बोला मजाकिए टोन म— मरी साली बडी-बिटाई पटल नगरी म करती क्या! इसलिये यहां आमन्त्रित कर लाया। यह अपना है। जसी वह भाभी, वसी यह! रोग शैया पर विश्राम करती रानी साहिबा की देख रेख हो जाएगी। स्वय मुझे चार-छ दिन पयटन पर रहना होगा। लौह पथ-गामिनी से

यात्रा करनी होगी। तब कण्ठ में गंगाजल गेरने वाला तो कोई चाहिए न! वह कहता-कहता स्वयं ही हंस पड़ा। फिर स्वाभाविक लहजे में बोला—'भई वाह, तमाशा भी क्या है! दोस्त हो तो ऐसा हो। कहने लगा—यार तू मौज से दूर घर जा। होते हमारे चिन्ता किस चीज की? भेजा न हम पुर्देस को? कोई राजस्थानी ऊंट-बूट मिले तो गले टांग देना। पर सिर पर इस कौन-सी मिनिस्ट्री सम्हालनी है?'

जितेन ने मुंह मटकाते हुए देखा। गिन्नी होंठ सिकोड़ मुंह बनाए—हूँ हूँ! बस! बस! वह कब दबे गुस्से में दहक रही है।

सच में इन कुछ ही चार-छह दिनों में इस गिलहरी में बड़ा अन्तर आ गया है। एकाध दिन तो यों ही फूहड़ बनी रही। न सलीके से कपड़े पहनने का शऊर न चोटी काढ़ने का न उठने-बैठने का! बोलती तो बस बोलती चली जाएगी ढलान पर चलकर पहिए की तरह। कहा बोले जा रही है। क्या बोले जा रही है। किससे बोले जा रही है—कोई सुध नहीं।

—भाभी, हमारी मण्डी धमोरा वाली भाभी भी बड़ी मजाकदार हैं। हम सब उन्हें मजेदार भाभी कहते हैं। पहले भइया से लड़ेंगी। फिर हाथ नचाएंगी। फिर गुस्से से अपने पांवों को अपने आप धरती पर पटकेंगी। सच्ची भाभी भइया मौज करते हैं। कहते हैं—औरत जात को यह सताना अच्छा नहीं। तुलसीदास जी ने जो कहा है।

—हमारी जो लछमी है न भाभी, सच्ची जिज्जी! वह बन-चीमासा से अच्छा नाचती है। वह कहती है कि वह आगे चलकर सिनेमा में काम करेगी। मोटर-गाड़ियों की मालकिन बनेगी। तब भी मुझे भूलेगी नहीं।

—हमारे रघुम की अम्मा जी— निरी पूरी बूढ़ी होकर भी लड़कियों की तरह हाय-टायम में नाचती हैं। छुन-छुम बाजना है तो घुंघरू बच्चा की तरह मुंह से चूम लिया है। लोग कहते हैं बच्चा से दस प्यार है। तभी घर में कुत्ता पाल रखा है। कहते हैं कि टम्पा नू।

तक खा लेती है और अपनी खटिया पर ही सुलाती है।

—और भाभी यो मिसेज ठाकुर! हर साल मुर्गी के अण्डे की तरह एक बच्चा! वह अपनी एक अंगुली हवा में खड़ी करती।

फिर भाभी के तनिक पास खिसक कर कहेगी—भाभी हमें एक मुच्छन मास्टर जी पढ़ाने आते थे। ठिगने ठिगने से थे। वे मुझ से बिना बात गुस्सा होते और गुस्से मे मुझे 'गधी' कहते। एक दिन वे मुझ से कहने लगे कि मैं बड़ी मूर्ख हू। गवार हू। इत्ती बड़ी हो गई बगारू की तरह अभी तक मुझे 'शादी' की बात नही आती। पहले वे जहाँ पढ़ाते थे वहां इत्ती इत्ती छोटी छोकरिया भी सब जानती थी। पर मैं ही हूं जो । एक दिन हमारी मझली घनौरा वाली भाभी ने सब्बी भाभी खुद अपने कानों से सुना। बाबा से कहा। बाबा भी बिना बात उस बिचार पर लाठी लिए पिल पड़े। पता नही भीगी बिलिया की तरह कहां भागा! खि खि खि वह फिर हसने लगती।

लेकिन धीरे धीरे अब हालत इधर काफी बदल गई है। मालती को यह अन्दाजा लगाना कठिन हो जाता है कि यह वाकई भोली है या इस तरह की ऊट-पटांग बातें बनाकर उसे बनाया करती है। कभी कभी तो समझदारों से भी भली सयानी बात कर बैठती है।

अब कम से कम एक घण्टा गुसलखाने में लगता है। चार छः दिन में ही ब्रिलेन की सुगन्धित तेल की सारी शीशी माथे पर उड़ेल डाली है। जिनन आफिस से स्नो-लिन का पनूट लाया था जिससे उसने बीसों मायन रंग डाल है। सारे दिन शीशा सामने रहेगा। सन्ध्या को काजल लगाये आंखों में तेल डाल छत की मुडेर पर बैठी न मालूम क्या-क्या निहारती रहेगी। फिर नीचे उतर कर गहरी सांस भर कर दोना हाथों को हवा में खेंचती हुई होंठो ही होंठों में कहेगी—हट, हो गई! भाभी आज इत्ती अबेर तक भी भइया सीने नहीं!

मालती सब देखती है। सुनती है। लेकिन साफ-साफ समझ में न सा

नहीं। अधिक पढ़ी-लिखी नहीं है वह। बचपन में नाना की फटकार या अम्मी नानी के दुलार के कारण रामायण महाभारत और राम रच्छा पढ़ लेती है। ब्याह के दिनों में जितेन कहता था कि वह पढ़ा देगा। पर अब पढ़ा पढ़ाया भी सब बिसरा गई है। जिन्दगी की बात छोड़ मान लिया ठीक भी हो। जिसके कुछ माने भी हों। लेकिन जरूर कुछ बात है। तभी तो घर में अबजी बाचन हैं। मिन्नी ठीक कहती है।

मन उदास हो आता मालती का। उसे लगता उसकी उम्र रेत भीगते कम्बल की तरह भारी होती चली जा रही है। सांस सांस लेने में भी कठिनाई हो रही है। पिछले सवा साल की बीमारी में इतना कमजोर उसने अपने को कभी भी महसूस नहीं किया। जितेन पहले भी उसका उखड़ा-सा रहता लेकिन कभी-उदास मोमी बातें तो कम ही किया करता था। आफिस के काम में भी तन-मन से जुटा रहता था। पर अब! दस सवा-रंग घर में ही बीत जाते हैं। किसी-किसी दिन तो खाली छुट्टी लेकर दुपहर को ही हाजिर

'मिन्नी मर्द पन्द्र हिसाब करना तो कोई तुम से सीखे!
लेकिन हां जरा पकोड़-आलोड तो बना अभी। तेरे हाथ की पकौड़ियां सच! पर हू बेसन में नमक में मिलाती। फिर दालचीन से दालना मरे ही बगर नमकीन हो जाती है। शाम के ख्याले में चीनी के बन्धे वह कभी मिन्नी में अपनी चटनी डबोने को कहता। फिर मुह निचोड़ता हुआ कहता— क्या अक्सर हो गई अक्सर! इतनी मीठी कि मसुरी पी नहीं जाती। सारा स्वाद ही चला जाता है! क्यों?

निगाहें फिर मिन्नी पर अटक जाती हैं।

मालती जानती है उसका शरीर अब निचुड़ हुए बोल की तरह बेकाम है। न रक्त! न मांस! साथ भी हड्डियां से अलग हो रही है। इस अपने दो चौदह बरसों की बात चलकर चाली जो जिसने पाटन्न महीने से अपनी दवा के यहां रहती पड़े हैं। जितेन ईलाज करवाकर हरदार अब ऊब चुका है। आफिस से लौटने के बाद उसकी निगाहों से केवल तर बार

देख भर लेता है। उसका जी चाहता है कि पहले की तरह उसके तपते माथे को सहलाए उससे बातें करें, उसका मन बहलाए। उसके साथ बैठकर, बच्चों के बारे में बातें करने में उसे अजीब-सा सुख मिलता है। वह उसके हाथों को अपने हाथों से थामकर अपनी मुंदी पलकों पर टिका देती है। और खोई-खोई-सी सुनती जाती है और जितेन कहता चला जाता है—मण्टू को वह स्कूल भेजेगा! टिंकू कितना समझदार है! इतने छोटे कम अक्ल के बच्चे इस तरह रह सकते हैं, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती! परसों जो चिट्ठी आई थी! वह अचकचाकर देखता—मालती की आंखों में उसके मोती! और उसकी सारी हथेली नहा आई है!—एक बार बस केवल एक बार कभी ऐसी बातें सुनने के लिए वह तरस उठती है। पर जब से मिन्नी आई है! तब से!

उसका मन कांच के टूटते टुकड़ों की तरह खनखना जाता और अथाह में डूब जाता।

जितेन अब अधिकतर ऊपरी वाले कमरे में बैठा रहता है। मिन्नी बैठी रहती है। उसकी कलाई से घड़ी खोलती है। जूते उतारती है। मोजे उतारती है। करीने से उसके कपड़े तह करके हैंगर में सजाती है। उसके लिए वह रूमाल ही नहीं तकिए का 'स्वीट ड्रीम' लिखा गिलाफ भी काढ़ने को कहती है। और कभी कहती है कि वह चादर भी काढ़ेगी—बेल-बूटों वाली।

भइया आज आपने खाना नहीं खाया। अच्छा नहीं बना क्या?

'खा तो लिया।

'हूं नहीं खाया! बस इसे खाओ न! कितना घी लगा है! कितनी मिहनत से सेंक-सेंक कर बनाई है—आपके लिए!'

न बस!

नहीं भइया।'

"ना ना! वह अपने दोनों फले, उल्टे हाथों से पानी ढंक देता और अपनी ओर सरका लेता।

पर मिन्नी माने तब न ! वह जबरदस्ती निशाना साध कर रोटी गेर देती है।

॰ ब्च प !'

मिन्नी देखती रहती है— मैं खिला दूं भइया।

पास ही दूसरे कमरे में अचेत-सी लेटी मालती तड़प उठती है। उसके सूखे हड्डियों वाले शरीर में एक साथ हजारों सुइयां कसकने लगती हैं। उसका शरीर फर्श से आ टकराता है। वह सुन्न रह जाती है। जैसे सारी चेतना चुक गई हो। तभी फिर खिलखिलाहट और हंसी के फव्वारे! वह अपने कानों पर हथेली धर देती है।

और थाली पर ही हाथ धोकर जितेन बाहर ही बाहर घूमने निकल जाता है।

मिन्नी फिर भागती भीतर आती है। उसका उमगा शरीर खिल रहा है। पांव थिरक रहे हैं। आंखें अभी तक भी नाच रही हैं— 'भाभी आप क्या लेंगी ?

कुछ नहीं।

कुछ तो लो भाभी ! जो कहो सो बना दूं !

!

भइया भी क्या ! अकारण वह हंस पड़ता— देखो न खाना खाते-खाते बीच में ही उठकर पड़ते हैं— अब नहीं खाना। बस बस् । पानी परे हटाकर दोनों हाथों से ढक लेते हैं। लेकिन जब मैं अपने हाथों जोड़-तोड़ कर खिलाने लगती हूं तो अच्छी भाभी दो-तीन रोटियां और चबा जाते हैं। जब तक मैं मना नहीं करूंगी मुंह चलाते रहेंगे। और देखो न भाभी पानी भी मुझी को पिलाना पड़ता है बच्चों की तरह !

फिर भाभी के उनींदे चेहरे की ओर देखती।

"भइया आपसे कितना प्यार करते हैं भाभी। हमारे पड़ोस नगर वाले मकान हमारी मालकिन भाभी मामा को कितना प्यार करते हैं उससे भी

अधिक। यो हमारी तख्छेदार भाभी तो बस् !

मालती का झुलसा मन बुम-सा जाता।

परसों भइया कहते थे भाभी !

। '

आप को बुखार तो नहीं भाभी !' वह बिल्ली की तरह उछल कर पलंग की पाटी पर जा विराजती। माथे पर हाथ फेरती—'तप रहा है भाभी भट्ठी की तरह ! कहते हैं बरफ की पत्ती धरने से ठण्डक पड़ जाती है। भाभी थोडा तलुओं को मल दूं ! आप कहती हैं उससे ठण्डाई पड़ती है। प्राणों को सुख मिलता है।

नहीं नहीं। मालती झटके से कहती जैसे बिच्छू ने डंक मार डाला हो। 'तुम खा लो मिन्नी ! जाओ रोटियां ठण्डी हो जाएंगी।

भइया कहते हैं भाभी कि मेरे साथ बठकर खाने म उन्हें बहुत अच्छा लगता है।

भाभी की ओर से कोई उत्तर नहीं लौटता। तब मिन्नी धीरे-से उठती है। मुड़कर फिर देखती है— दनी की आज चुकता हो गया, भाभी।

इस महीन दस को ही सारा मसखान चाट डाला। मैं होती तो इतने से ही महीना दस दिन और निकाल देती। घी चुआ चुआ कर सांझ-सकारे पराठे खिलाती जाओगी तो बचेगा क्या ? मालती क मन म आता पर कह न पाती।

भाभी आप बहुत बुरी हैं। मण्टू-टिंकू को न जाने कहां भेज दिया है ! एक बार दिखलाया तक नहीं। सुना बहुत प्यारे हैं। बहुत खूबसूरत। हू-बहू भइया पर गए हैं।

मालती मौन देखती रहती है।

आपको बच्चों की याद नहीं आती भाभी ?'

मालती कुछ कह न पाती।

भाभी, सच्ची! हमारे बुलन्दशहर वाले भइया कहते हैं कि मैं पढ़ लिख कर डाक्टरनी बनने वाली हूँ। मेरे जनम-पत्तरे में भी माजी कहती हैं कुछ ऐसा ही संजोग है। तब सच्ची भाभी, मैं इलाज कर आपको अच्छा कर दूंगी। भइया तो कुछ करते धरते नहीं। आज-कल के डाक्टर मुए निगोड़े होते हैं। हमारे बुलन्दशहर में है एक भाभी। वह जिसका इलाज करता है वही चंगा हो जाता है।

।

भाभी बच्चों को हमारे घर भेज दो! सच्ची, मैं पढ़ाऊँगी। भाभी भइया अब तितरी तितरी नहीं कहते। मेरी खिड़की पर दो मधु रैयाँ छुपा के कभी 'सबकी सबकी' कह देते हैं। तब पता नहीं मैं क्यों शरमा जाती हूँ। सच्ची भाभी मेरा मुँह लाल हो जाता है—पके बेर की तरह!

मालती को कुछ सुनाई नहीं देता। वह आँखें फाड़े पपड़ी लगे सूखे हुए होंठ खोले विस्मित-सी छत की ओर देखती रहती है। खिड़की के ठीक ऊपर कड़ियों के पायों के पास हवा की आवाज है। ठण्डी हवा से बचने के लिए जिन जाड़ों में अखबार या मोटे गत्ते के टुकड़े में दबा देते हैं। लेकिन गर्मियों के आते ही यह आवरण हट जाता है। पर इस साल वह लगा हुआ है—उसकी लम्बी बीमारी के कारण। मकड़ियों ने इनमें उलझ कर जाले रच डाले हैं। इन जालों के उस पार उसे एक तस्वीर दीखती है जिसमें अब तक की सारी तह पड़ चुकी है। लेकिन एकान्त के सूने क्षणों में जब कभी उसकी पलकें झपकती हैं—वही तस्वीर उभर कर ऊपर आती है—झलमली-सी। धुंधली-सी। न जाने क्या!

सामने दाहिनी ओर आँगन में बच्चों के टूटे खिलौने पड़े हैं। रंग उड़ चुका है। बहू बुआ के यहाँ आते समय भूल गया था। रूनक की तरह चहकती थी। जो घर के प्रत्येक व्यक्ति से बातें करता हुआ कहा करता था— भाभी तुम भी आना हाँ! भाभी! भाभी!!!

सब से कोई उस ओर जा न पाया।

परसों टिंकू का पत्र था। पेन्सिल से लिखा था— मम्मी, यहां सब हमसे झगड़ते हैं। कहते हैं हमारी मम्मी बीमार है। मरने वाली है। मण्टू आधी रात को नींद में चिल्लाने लगता है। वह अब खाना नहीं खाता। दूध भी नहीं पीता। हमें बुला लो मम्मी !'

सच ही मालती का गला सूख आता। चीखने को मन होता। पर गले में पत्थर जम जाता। शब्द फूट कर बाहर न आ पाता।

मिन्नी पानी !

दो घूंट पानी गले से उतरने पर होश आते। मिन्नी की ओर देखती। हांफती रोती— मिन्नो तुम्हें क्या अच्छे लगते हैं! वे भी तो तुम्हें प्यार करते हैं न !

!

"मेरे बच्चों की देख रेख कर सकोगी मिन्नी! उन्हें प्यार कर सकोगी! बिलकुल तुम्हारे भैया पर गए हैं।

थोड़ी देर बाद मालती सयत होती तो स्वयं ही पछताने लगती। हाय यह क्या कह गई मिन्नी से। नहीं। नहीं। वह कस कर चार पाई की पाटी से जा लगती। जैसे भूचाल से धरती फट रही हो। प्राण पाने के लिए वह अन्तिम सहारे से लिपटी जा रही हो। कहीं मझधार में तिनका और !

चूंकि मिन्नी की छुट्टियां अब किनारे पर हैं। चूंकि जल्दी ही उसे अब अपने शहर लौटना है। चूंकि जितेन ने ही सम्भवतः उसे उकसाया हो अतः आज प्रातः से ही वह तुली थी कि इतने दिनों में कभी उसने चिड़ियाघर नहीं देखा। इसलिए आज इतवार का दिन होने से छुट्टी है। इसलिए उसे अवश्य दिखलाया जाय। नहीं तो वह वहां लौटकर क्या कहेगी! बाबा ने चलती बेर टेसन में खास भइया से कहा था कि वह इस बार अवश्य पूरी दिल्ली देखकर लौटनी चाहिए। भइया ने सिर

हिलाते हुए हामी भी भरी थी। लेकिन ।

जितेन ने पहले अधिक बोझी होने की बात कही। फिर 'हेडेक' की ओर अन्त में जब मिन्नी नहीं मानी तो उसने श्रीमती जी की ओर देखा—'यह गांव की गिलहरी चैन से बैठने नहीं देगी। बताओ क्या करूं! दो-चार रुपए का पानी यों ही हो जाएगा ।' पर

मालती ने स्पष्ट कोई उत्तर न दिया। सुगना बुआ और बच्चों की नई चिट्ठी की बातें उघाड़कर चिढ़ा ही अन्त वाली।

अन्त में मिन्नी ने शोरगुल अधिक मचाया तो वह अनमने भाव से तैयार हुआ। मिन्नी के फूहड़पन की दो चार बातें बुदबुदाता हुआ मालती के सामने से भुनभुनाकर गुजरा।

घर वाले बाद सीढ़ियों से दालान की ओर तेजी से उतरते जूतों की खट्-खट् आवाज आई। फिर सम्मिलित हँसी का जैसा स्वर उभरा।

मालती अकेली रह गई तो वे सूनी दीवारें मसान की सी मुर्दनगी लिए उसे भरमाने को आगे। वह आगे पीछे बार-बार करवट बदलती रही। कभी उस चिड़ियाघर की बतख—सारसों वाली घुमावदार झील के किनारे करील की छबीली डालियों की एकान्त छांह में हरी हरी मखमली मुलायम दूब पर बैठी मिन्नी दीखती। जितेन दीखता। तरह-तरह की गुन-गुन की कच्ची मोटी बातें सुनाई देतीं। झटके से वह करवट बदलती और आंखें मींच लेती।

अब फिर पलकें झपने पर फिर वही दृश्य। अब मिन्नी के पुन्नों के पास आसमान की ओर मुंह किए जितेन लेटा है।—जैसे सोया हो। भूला हो। वो चुनिया के साथ 'प्यार सीताराम' गुनगुनाकर रास्ता हुई जा रही है, पर उधर ध्यान नहीं। मिन्नी उसके माथे की पसीने की बूंदों को अपने हाथों से पोंछती है। जितेन के मन पाथर-सी खूबसूरत घुंघराले बालों को फूल की तरह अंगुलियों में लपेटती है। फिर बीच में से अंगुली हटाकर देखता है।—पर मुट्ठी भर सा पूरी भलाई या बना नहीं। दो सिरे मिलते नहीं। बीच में नाखून के बराबर दायरा खाली रह जाता है।

तब से कोई उस ओर जा न पाया।

परसों टिंकू का पत्र था। पेन्सिल से लिखा था— मम्मी यहां सब हमसे झगड़ते हैं। कहते हैं हमारी मम्मी बीमार है। मरने वाली है। मण्टू आधी रात को नींद में चिल्लाने लगता है। वह अब खाना नहीं खाता। दूध भी नहीं पीता। तुम बता लो मम्मी !

सच ही मालती का गला सूख आता। चीखने को मन होता। पर गले में पत्थर जम जाता। शब्द फूट कर बाहर न आ पाता।

मिन्नी पानी ।

दो घूंट पानी गले से उतरने पर होश आने। मिन्नी की ओर देखती। हांफती रोती— मिन्नी तुम्हें भया अच्छे लगते हैं ! वे भी तो तुम्हें प्यार करते हैं न !

!

मेरे बच्चों की देख रेख कर सकोगी मिन्नी ! उन्हें प्यार कर सकोगी ! बिलकुल तुम्हारे भया पर गए हैं।

थोड़ी देर बाद मालती सयत होती तो स्वयं ही पछताने लगती। हाय वह क्या कह गई मिन्नी से। नहीं। नहीं। वह कस कर चार पाई की पाटी से जा लगती। जैसे भूचाल से धरती फट रही हो। त्राण पाने के लिए वह अन्तिम सहारे से लिपटी जा रही हो। कहीं मझ धार में तिनका और !

चूंकि मिन्नी की छुट्टियां अब किनारे पर हैं। चूंकि जल्दी ही उसे अब अपने शहर लौटना है। चूंकि जितेन ने ही सम्भवतः उसे उकसाया हो अन्यथा आज प्रात से ही वह तुली थी कि इस दिल्ली में अभी उसने विडीयर नहीं देखा। इसलिए आज इतवार का दिन होने से छगी है। इसलिए उसे अवश्य दिखलाया जाय। नहीं तो वह वहां लौटकर क्या कहेगी ! बाबा ने चलती बार टेसन में बलास भइया से कहा था कि वह इस बार अवश्य पूरी दिल्ली दिखाकर लौटनी चाहिए। भइया ने सिर

हिलाते हुए हामी भी भरी थी। लेकिन ।

जितेन ने पहले अधिक 'चीजी' होने की बात कही। फिर हिचक की ओर अन्त में जब मिन्नी नहीं मानी तो उसने श्रीमती जी की ओर देखा— यह गांव की गिलहरी धन से बढ़ने नहीं देगी। बताओ क्या करूं। दो-चार रुपए का पानी यों ही हो जाएगा ।पर

मालती ने स्पष्ट कोई उत्तर न दिया। मुन्नना बुआ और बच्चों की नई चिटगी की बातें उघाड़कर दिया ही अन्त डाली।

अन्त में मिन्नी ने शोरगुल अधिक मचाया तो वह अनमने भाव से तैयार हुआ। मिन्नी के फूहड़पन की दो-चार बातें बुदबुदाता हुआ मालती के सामने से झनझनाता गुजरा।

पर ढलान वाली गोठियों में ढलान की ओर तेजी से उतरते जूतों की खट-खट आवाज आई। फिर सम्मिलित हंसी का जैसा स्वर व्यापा।

मालती अकेली रह गई तो वे सूनी दीवारें मसान की सी मुर्दनगी लिए उसे भक्षण को भागीं। वह आंखें मींच बार-बार करवट बदलती रही। कभी उस चिड़ियाघर की बगल—बारहदारी वाली घुमावदार लान के किनारे बबूल की छतरीनुमा डालियों की एकांत छांह में हरी-हरी मखमली मुलायम दूब पर बैठी मिन्नी दीखती। जितेन दीखता। उन्हें तरह की खुसर-फुसर की छोटी-मोटी बातें सुनाई देतीं। दहल से वह करवट बदलती और आंखें खोल देती।

अब फिर समय ढलने पर फिर वही दृश्य। अब मिन्नी के अन्तों के पास आसपास की ओर मढ़ चित्र जितेन मग्न है।—जैसे सोया हो। सूना हो। जो अनुनिता के बीच बार मीनारें जलकर राख हुए जा रही हैं पर उस होश नहीं। मिन्नी उमड़ मन का सब्र का ... झपट में पाता है। जितेन का पके पांसर-से अल्हड़ लड़कपन वाली बातों को अपने गुब्बारे की तरह अपनों में ताजनी है। फिर ... के छोटी छोड़कर देखता है।—पर मुआ छन्ना पूरी नामाई ... ना मिले मिलते नहीं। बीच में नाखून के बराबर ... फर्क पड़ गया है।

मिन्नी दो अगुलियों की नोक से उन्हें फिर फिर मिलाने की असफल चेष्टा कर रही है। दोनों चुप हैं। उस ओर रास्ते से इक्के-दुक्के लोग गुजर रहे हैं लेकिन मिन्नी की उधर पीठ है। उसने जितन का धूप का काला चश्मा पहन रखा है।

—तुम मेरी तरफ या घूर कर क्यों देख रहे हो ?

—तुम्हारी दो आखों म छोट-छोटे दो जितन दिखाई दे रहे हैं।

फिर दोनों चुप है।

—घर लौट कर याद करेगी न मिन्नी ?

वह एक बार उसकी ओर देखती है। हस भर देती है।

गिलहरी जब हसती है तो कितनी भली लगती है! अमने-सा भोला मुखडा। रुई के गोल-स कोमल गुलाबी गालो पर गड्ढे। कच्चे अनार के सफेद दानो की तरह मोतियों दात मालती के खूब मन में तीर-सा चुभा। लपक कर उसने पास ही मेज पर धरी कानी आरसी उठाई। अपने चहरे के सामने रख कर अपने से ही आखें चार करती देखती रही, अविचलित भाव से। देखते देखते उसका मुह मलिन हो आया। आंखों में कोर भीज गए।

दोपहर ढले बाहर की जाफरी के किवाड का कुण्डा खटका। मालती ने चौंक कर आंखा।—मानों नीद से जागी हो। अरे इस इत्ती सवेर!

धम् धम् कर मिन्नी दाखिल हुई हाथ में प्लास्टिक की रीती टोकरी नचाती हुई।

मालती ने यों ही दखा— वे नही आए! अधर अनचाहे खुले।

यही सीधे ब्लाक की तरफ गए हैं। किसी मद्रासी दोस्त से कुछ काम बताते थे।

वह धम्म से निढ़ाल चरमराती कुर्सी पर गिर पडी। पास ही कुर्सी की पीठ की पाटी पर लटके मालती के धुले ब्लाउज से पसीना पोछती हुई बिखरे बालों को दोनों हाथो स कनपटी के ऊपर से समेटकर, माथे

की ओर से पीछे ले गई। फिर घुटनों पर दोनों कुहनियाँ टिकाकर, दोनों हाथों से ठोड़ी थामती चहक उठी—'मज़ा आ गया! हद हो गई भाभी! भइया भी क्या हैं! सच्ची मैं मरती-मरती यहाँ तक आ पाई। इतना खिला-पिला बस! जहाँ पर भी खाने की कोई चीज़ दिखी नहीं बस हमारे मुनसिपल्टी की कमेटी के कूड़ा उठाने वाले बैल की तरह अपने आप खिंच पड़े। बगल की पकौड़ी खिलाई। दही भल्ले खिलाए। इतने सन्तरे खुद अपने हाथों छीलकर खिलाए। ऊपर से दो नहीं नहीं तीन भरी ठण्डी बोतलें पिलाईं। मैं जितनी मनाही करती भइया उतनी ज़बरन करते। कहते—मैं खाऊँगी नहीं तो अपनी भाभी की तरह सींक सलाई बन जाऊँगी। मोटर पर तो बेहद मज़ा आया भाभी। भइया की बगल में बैठने को ठौर मिल गई। भइया गिन-गिन कर सब दिखाते रहे—इण्डिया गेट। हवाई-जहाज़ का अड्डा। इस शहर की मोटर-बस भी क्या है भाभी! मुए बड़े झटके लगते हैं। कभी भइया मेरे ऊपर गिर पड़ते और कभी मैं भइया के ऊपर!

मालती के मन आया कि वह यह भी पूछे कि आया चिड़ियाघर तो घुमा लाए देख लिया होगा फिर सारे दिन क्या करते रहे। झील के किनारे दूब पर भी बैठे होंगे। अंधेरे में क्या-क्या बातें हुईं। पर तभी दरवाज़ा खुला। बिजली का खटका हुआ।

मालती ने महसूस किया कि शायद वह ठीक सोच रही थी। उसके मुँह का ज़ायका बिगड़ गया। किसी से उसने कोई बात नहीं की। कट मरने की तरह निढाल लेट गई।

सब भी तो ऐसा ही हुआ था कुछ! परमा भी! निरमों भी!

किसी काम की जल्दी। सबको नौकरी है—कोई ठौर है। कोई न कभी काम तो उनके लिए कुछ न और सोना मयस्सर हो सकता।

मालती वाले कमरे में आज सुबह से लोगों का है। क्या पता किस

मे छुट्टी का बहाना बना लिया हो।

मिन्नी जितेन के जूते के तस्मे बांधती है। और उसके हाथ को अपने हाथ म थामकर खड़ी।

मालती सिर से पांव तक कान बनी है। जितेन के हाथ में कल शाम घर आते समय कागजों का एक पुलन्दा था। हो न हो गिलहरी के लिए कोई चीज़ लाया हो। कल दिन से वह परेशान है। बातें करते करते काटने को भागता है।

दोनों जने पता नहीं क्या-क्या बातें कर रहे हैं। लड़ते हैं। झगड़ते हैं। कभी कभी हंस भी लेते हैं। वह आज फिर 'गिलहरी गिलहरी' चिढ़ा रहा है। नागन' कहता हुआ उसकी चोटी खींच रहा है। उसके बालों में फूल खोंसता मुई अंगरेजी म भी कुछ कह रहा है।

और समझा रहा है कि उसे अब सलीके से कपड़े पहनने चाहिए। सलीके से बोलना चाहिए। सलीके से उठना-बैठना चाहिए। क्योंकि अब वह बच्ची नहीं है। गांवों म तो उसकी उमर की लड़कियों के दो-दो बच्चे हो जाते हैं। और वह सिर हिला कर हामी भर रही है कि उसकी कुमारी बुआ की छोटी लड़की कुलवंती का ब्याह बिरन पुरा में हुआ है। उसकी (मिन्नी की) मांजी कहती हैं कि वह उमर म उससे कम है। लेकिन इसी पिछले चैत म एक बच्चा हुआ है।

बाहर घर घर घर करता हुआ स्कूटर खड़ा है।

जितेन सीढ़ियां पर खड़ा आवाज लगा रहा है—'सुन्ती नहीं, अरि ओ चुड़ैल! '

मिन्नी हड़बड़ाती खड़ी है। उसकी बोरी के हत्थे वाली प्लास्टिक की टोकरी नहीं मिल पा रही है। अब उसकी बागपत वाली भाभी उसका भाड़ कर डालेगी।

काफी बड़ी उथल-पुथल के पश्चात् बड़ी कठिनाई से कोयले की रीती बोरी से दबी मिल जाती है। झाड़ू लगाते समय शायद मेहतरानी की मेहरबानी हुई हो।

'भइया के साथ कभी हमारे घर आइयो न भाभी !

मालती के अधर खुल पड़ते हैं— हां हां ! क्यों नहीं !

मिन्नी के हाथ में थमी टोकरी पंखे की तरह घूमती जाती है— मेरे बाबा कहते हैं भाभी कि अगर मैं पढ़ने में इक्कीस नहीं रही तो मैं आगे पढ़ूंगी नहीं। तब खाता-पीता अच्छा घर ढूंढ कर मेरा ब्याह हो जाएगा। ब्याह में तो आओगी न भाभी ! मण्टू टिंकू को भी लइयो हं !

मालती क्या कहे ! होले से हंस देती है।

नीचे से फिर आवाज आती है कि गाड़ी का समय हो गया है। चुड़ैल क्या कर रही है।

मिन्नी उतावले में हाथ जोड़ने की तरह अपने दोनों हाथों की अंगुलियां केवल दूर से ही मिला देती है— अच्छा भाभी !

सीढ़ियां उतर कर पल भर बाद पुनः हांफती लौट आती है— मुझे याद ही नहीं रहा भाभी। यह जतन से थामे अखबारी कागज में लिपटी कोई चीज निकालती है। यह भइया का फोटू लिए जा रही हूं भाभी। भइया से मांग कर—हां ! वहां अपनी सखियों जिज्जी को दिखाऊंगी। मण्डी धनौरा वाली भाभी को भी। बुलन्दशहर में हमारे दूर के रिश्ते के फूफा के लड़के अक्सर भइया की ऐन मैन जितेन भइया जैसे ही हैं। हमारे घर रोज आने-जाने हैं। मेरे कन्धों पर दोनों हाथ धर कर जोर से दबाते हैं। कहते हैं इन्हें तेरे मामा पाले हैं या कच्चे ! कभी-कभी वे मुझे पढ़ाने और बजार घुमाने को भी कहते हैं। तुम कहो तो उनको भी दिखाऊंगी भाभी ! एक सांस में कह कर मिन्नी तेजी से चली जाती है।

स्कूटर के पहले मिन्नी बढ़ती है। फिर जितेन। स्कूटर का मुंह सामने सड़क की ओर है। इसलिए मालती की ओर पीठ। खिड़की के शीशों के सहारे खड़ी वह देख रही है।

स्कूटर की आवाज बढ़ती है। छोटे-छोटे दो तिपहिए पहिए घूमते हैं। गाड़ी आगे निकलती है।

भी मिली नहीं।

'अच्छा' ऽ ऽ ! लक्खी ताऊ ने अजीब ढंग की सूरत बनाई। तराजू मे भर भर कर फिर आटा तोलने लगे और सामने खड़े ग्राहक के खुले पसे म फटाफट गेरने लगे। उन्हें फिर मेरी उपस्थिति का भी भान न रहा—अ ऽ ये लल्ला कित्ता गुड़! धुली मूग की दाल पाव भर! आट्टा गनेशी-छाप अपने तोई नही। फौक्टी का माल नहीं बेचते—समझे! अये रामदीन के छोकरे! बन्ना उठा, बट्टा!

मैं चला गया।

लक्खी ताऊ के इकलौते बेटे बब्बन और हमारे दास भैया की कभी गहरी दोस्ती थी। बर्सों तक वे साथ-साथ पढ़े बढ़े और खेल थ। इसी कारण हमारे और उनके घरों मे भी आना-जाना था। कहते हैं बब्बन भैया उगती तरुणाई म ही भगवान के प्यारे हो गए। तब स लक्खी ताऊ दास भैया को और भी अधिक चाहने लगे थ। दास भैया जब भी घर आते लक्खी ताऊ स मिले बगैर नही जाते थ।

पर दास भैया भला कहां से आने लगे! अन्धेरी सकरी गली के घुमावदार मोड़ों से गुजरता हुआ सोचता रहा—

घर की फिकर ही उन्हें होती तो इन पिछले तीन चार सालों में एक बार भी घर न आते! पत्र भेज कर ही कभी खैर-खबर न लेत!—बच्चे कसे हैं! अम्मा कैसी हैं! आंखें देखती हैं या नहीं! बीमार तो नही रहती! खाने को होता है या नहीं! हम जीते हैं या मरते हैं!—कभी भूल कर भी जानने की कोशिश न की उन्होंने।

और फिर अपना यह हाल! नौकरी के यह! कल का भरोसा नहीं।—क्या होगा!

जी उचाट-सा आया। पढ़ाने म भी मन लगा नहीं। किसी तरह दिन कटा। दूकान का एक घण्टा पूरा किया। सदा की तरह उनमना उदास घर लौटा तो दीखा—सांझ घिर आई है। घरों म दीए जल चुके हैं।

पर अपने कमरे में अभी तक भी अंधेरा है रोज की तरह। अम्मा टिन की ढिबरी जलाए रसोई घर में साग छौंक रही हैं। पप्पू जूतों की आहट सुनते ही अंधियारे में भागता हुआ मेरी ओर लपका। पांवों पर लिपटता हुआ बोला—'चक्का!'

दास भैया का सबसे छोटा बेटा है—पप्पू। जो अभी तक भी तुतला-तुतला कर बोलता है। कक्का के बजाय चक्का कहता है।

मुस्कान की असफल चेष्टा कर मैंने उसे बांहों में उठाया और उसके धूल से सने उदास मुखड़े को चूम लिया।

तभी अम्मा बोल उठीं—'बिन्नू!' हाथ में भभकती ढिबरी लिए बाहर की ओर झांकने लगीं, कुछ बुदबुदाती, बड़बड़ाती हुई। अम्मा को सुनाई और दिखाई कम देता है। दास भैया के बारे में सोचते-सोचते कभी-कभी उन्हें न जाने क्या हो जाता है। यों ही अकारण चौंककर बोल पड़ती हैं—बिन्नू!

ध्यान दिया नहीं मैंने। पप्पू को गोदी में लिए छज्जे की सीढ़ियों की ओर बढ़ने लगा। तभी पप्पू ने अपनी नन्ही बांहें मेरे गले में जोर से कस लीं—चक्का!

देर तक टहलता रहा। कभी तारों की ओर कभी दूर ऊंचाई तक-फैले अंधेरे में घिरे युकेलिप्टस के पेड़ों की ओर ताकता रहा।

'चक्का हम पाला जाये!' पप्पू ने फरमाइश की।

'अच्छा।'

'चक्का हम भला बेता है। मां को छोड़े नहीं।'

'अच्छा।'

'फिर कहती है चक्का सोने से बात भूल जाती है।'

'हां बात रूठ जाता है।'

"बात अच्छा कैसे है चक्का?"

मैं क्या जवाब देता। कुछ कह कर टालता हुआ चुप हो गया। पर पप्पू चुप न रह सका।

क्षण भर बाद फिर बोल उठा— भवका, हमाली पूछी बिल्ली का मुख काला है।

मैंने सहमति प्रकट की। सिर हिलाया—हां, है।

वह जूथ बोलती है न भवका।

"हां।

'निही कहती है जो जूथ बोलता है उसका मुख काला होता है। मैं जूथ नहीं बोलता न भवका!

हां तुम बहुत सच्चे हो। मैंने उसके रूखे बालों को सहलाया।

पूछी दूद पीती है भवका!

हां बहुत बुरी है पूसी। दूध पीती है न!

मैं भी दूद पियूगा भवका!

हां तुम भी पियोगे।

इत्ता-इत्ता पियूगा! छब पियूगा! छब! उसने अपनी दोनों नौनी बाहें फला दी।

हां हां कहकर मैं मूढ़र पर आ बठा। अभी तक भी निगाहें ऊंचे ऊंचे दानवकार युकलिप्टस् के पेड़ों पर टिकी थीं। जो अब और घन और शान्त हो आए थे।

पप्पू गो से उतर कर फर्श पर खेलने लगा। कोने म कुछ कोयले बिखर पड़ थ। उन्हीं से हाथ काले करने लगा। थोड़ी देर बाद गोदी पर आ लपका। दोनों काली बाहें जोर से गल म लपेट मेरे मुंह की ओर ताकने लगा— भवका!

बांहों की छाप गले पर छप गई। कमीज का कालर कालिख स पुत आया। रूमाल से यों ही पोंछ-पांछ कर फिर टहलने लगा। फिर मूढ़र पर बैठ गया।

बीच स तभी सिसकने का-सा स्वर सुनाई दिया। झुक कर झांका तो स्पष्ट कुछ दीखा नहीं। मेरे कमरे म अब धुंधली-सी बिजली झमक रही थी। मटमैला प्रकाश था—धीमा। कुहासे से घिरा जैसा। ऐसे

शायद मम्मी रोज ही कमरे में दिया बाल देती हैं। फिर नई बात क्या !

मैं निश्चिन्त बना रहा। अंधियारे में बैठा-बैठा न जाने क्या-क्या सोचता रहा।

तभी फिर खाँसने की भी आवाज आई।

पप्पू भी इस बार मेरे साथ कान लगा कर देखने लगा।

भइया आज घर में कोई मामा।

'कौन मामा?' उत्सुकता से पूछा।

पप्पू चुप रहा।

कब आया?

मन्दिर में।

कौन—न? मैंने और अधिक जिज्ञासा से दुहराया।

उसने अपना नन्हा-सा सिर हिला दिया कि वह नहीं जानता कौन है।

तभी दीदी कहाँ गई?

दीदी! गयी है निम्मो के पास।

मैं उसका हाथ थाम जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ नापने लगा। मम्मी ने बतलाया भी नहीं कौन मामा है। शायद छोटे मामा होंगे। उन्होंने ही आने को लिखा था। और कौन होगा!

किन्तु अपने विचार खतम कर होने से अन्दर घुसा। देखा—खिड़की की चार पाँच किए, कुर्सी पर पाँव पसार गरदन झुकाए कोई बैठा है। बालों में कन्घा नहीं है। सिगरेट का धुआँ छत की ओर उठ रहा है। मामा जी तो सिगरेट पीते नहीं! शायद भइया पप्पा नहीं समझते! तो फिर—!

मैं धीरे-से पास ही गया। ठीक आगे की ओर बढ़ा तो देखा—लाल भैया नए ढंग का लाल भभका पहने सूट बैठे हैं। होंठों पर सिगरेट लटकी है। मेरी उपस्थिति का एक भाव भी भान नहीं है।

देखता रहा लाल भैया की ओर—

आँखें गड्ढे में धँसी हैं। दुहरा मोटा चश्मा नीचे की ओर झुका है। गोरा दूध-सा धुला रंग उड़ कर स्याह पड़ गया है। दाढ़ी दिनों से बनी नहीं। रूखे बाल सफेद हो गए हैं—कपास की तरह। पपड़ी लगे ओंठ भिंचे हैं। पलकें मुंदी हैं। सिगरेट अपने आप सुलग रही है। धुएं की हल्की-सी लकीर ऊपर की ओर उठ रही है हवा में कांपती।

चाहकर भी दास भैया को जगा न पाया। दबे पांव हाले से कमरे से बाहर निकल पड़ा। दरवाज फिर ढक दिए।

दास भैया कभी कितने ठाट बाट से रहते थे! मक्खनी सिल्क की कमीज नीली काट्राई की पण्ट चमचमाते जूते मुंह पर कैप्सटन दबाए जिधर निकल पड़ते लोग देखते रह जाते।

वही दास भैया आज ऐसे भिंचे भिंचे बैठे हैं बुझे हुए। शरीर निचुड़ा हुआ। चेहरा—दयनीय कातर। कपड़े गए बीते मैले कुचैले—सिकुड़े हुए। क्या ये वही दास भैया हैं!—हड्डियों के ढांचे मात्र। मन लाख मनाए, मानता न था।

'अम्मा तुमने बतलाया भी नहीं दास भैया आए हैं! मैं तो सुना, सुबह ही आ गए थे मेरे जाने के थोड़ी ही देर बाद! शिकायत के स्वर में अम्मा से जब पूछा तो वे कुछ भी कह न पाईं। अम्मा की आँखें आज अधिक लाल हैं। अधिक भीगी। यह ठीक है कि रसोई में धुआं अधिक है। अम्मा को दिखलाई कम देता है। आँखों में पानी भरता रहता है लेकिन !

अम्मा की ओर देख न सका। लौट कर बरामदे में टहलता रहा। कमरे से तभी फिर खासने की आवाज आई। पप्पू को गोदी में थामे उधर बढ़ निकला।

दास भैया जग गए थे।

क्षण भर दोनों एक-दूसरे को देखते रहे। कोई कुछ न कह पाया।

"कब आए भैया? अनायास मुंह से निकल पड़ा।

दाऊ भैया जैसे नींद से जगे। उचक कर ऐसे देखने लगे मानो स्पष्ट कुछ दीखता न हो।— कौन मु दी ई स ।' उनके मुरझाए ओंठ फड़के।

'सुबह की गाड़ी से आए क्या?'

'हां।'

'चिट्ठी भी नहीं भेजी! डाकिए की राह देखते-देखते थक गए ।'

' ।

''मामा जी का जवाबी पत्र मिला?

'हां।

'अम्मा को इधर बुखार अधिक रहता है। दमा भी बढ़ गया है ।

'' ।

पप्पू सीढ़ियों पर फिसल पड़ा था। कलाई की हड्डी टूट गई। छोटे मामा जी ने अपने घर ले जाकर इलाज करवाया। यहां तो सरकारी अस्पताल में साफ पानी तक नहीं! प्राइवेट के लिए पैसे ।

दाऊ भैया बोल कुछ भी न पाए। केवल चुप देखते रहे।

कमरा गुमसुम रहा।

पप्पू दोनों बाहें कस कर लपेटे सामने बैठे अजनबी की ओर जिज्ञासा से देख रहा था। मीना अपनी लम्बी धोती का पल्ला दांत से दबाए दरवाजे के सहारे खड़ी थी। उसकी मां की कुछ बची-खुची धोतियां हैं, जिन्हें अब वह इस्तेमाल कर लेती है।

'पप्पू पहचानता नहीं चाचा को! तू ने नमस्ते कहा?' मैंने मौन भंग किया वातावरण की खिन्नता टटोलने के लिए।

पप्पू सकपका-सा गया। एक बार उसने मेरी ओर देखा। फिर निगाहें नीची कर लीं।

कमरे में फिर दमघोंटू सन्नाटा रहा, देर तक। भैया की अंगुलियों के बीच दबी आधी से अधिक सिगरेट जल कर राख हो गई। लम्बी

राख की सफेद लकीर अभी तक भी गिरी न थी। पप्पू कभी मेरी ओर देखता कभी सामने की ओर। नीना अंगुली में रस्सी की तरह बट कर धोती का पल्ला लपेट रही थी। पांव के अंगूठे से बिना बात मिट्टी का फर्श खुरच रही थी।

'नीना तू कहां चली गई थी?' वह घुटनभरा सन्नाटा सहा नहीं जा रहा था। अतः मैंने बड़ी ताकत लगा कर कहा रूखे कण्ठ सूखे स्वर में 'पापा आए हैं। सांझ के समय तो घर पर रहना चाहिए। देखो न, दिया भी देर से जला। शायद अम्मा ने जलाया होगा। नहीं तो अभी तक भी अंधेरा रहता।

प्रत्युत्तर में नीना से कुछ भी कहा नहीं गया।

थोड़ी देर पश्चात् अम्मा ने चौके से आवाज लगाई तो उठकर चला गया।

'देख तो बिन्नू को भूख लगी होगी। सुबह भी कुछ खाया नहीं। रोटियां अभी बन रही हैं। तू बाद में खा लीजो हां।'

नीना थाली लेकर आई तो एक बार दास भैया ने उसे पूरा देखा—सिर से पांव तक। बोले कुछ नहीं। यों ही रोटी तोड़ कर निवाले निगलने लगे। बीच-बीच में गले से नीचे उतारने के लिए पानी का सहारा लेना भी न भूलते। ध्यान उनका रोटियों की ओर नहीं खाने की ओर नहीं न जाने कहीं और था।

दो-चार रोटियां बड़ी मुश्किल से तोड़ी होंगी। खाया अनखाया कर, रूमाल से हाथ पोंछ कर बैठ गए और सिगरेट के कश खींचने लगे। अधमुंदी आंखों से छत की ओर उड़ते हुए धुएं की मोटी-मोटी पारदर्शी काली लकीरों की ओर देखने लगे।

मैं खाने बैठा तो अम्मा अभी तक भी कहे जा रही थीं—बिन्नू ने सुबह भी नहीं खाया और शाम भी। खाना नहीं खाएगा तो तन्दुरुस्ती बनेगी कैसे! तभी तो सूख कर कांटा रह गया है। रंग ही काला पड़ गया है। जब आया तो पहचाना तक नहीं। सच बिन्नू को क्या हो

गया है।

इतने दिनों बाद दास भैया घर आए। लेकिन घर में कुछ भी परिवर्तन नहीं झलकता रहा। वही रोज की उदासी। वही रोज का सूनापन। मीना वैसी ही चुप। पप्पू वैसा ही चुप। अम्मा अब बिलकुल भी बोलतीं नहीं।

लगता है इन तीन चार सालों में दास भैया बूढ़े हो गए। चेहरे पर झुर्रियां घिर आई हैं। बाल भी सफेद। कमर झुकी-सी। शरीर सूखा सा। खाते समय मैंने देखा हाथ की उभरी मोटी नसों के तार साफ झलक रहे थे। हड्डियां साफ दीख रही थीं। कपड़े भी ऐसे ही गए-गुजरे। बिस्तरा तक साथ नहीं। सच दास भैया क्या करते हैं।

मिट्टी से पुती, धुएं से पीली पड़ी दीवारों की ओर देखता रहा। पप्पू गोदी में ही बैठा-बैठा सो गया है। मीना बाहर बैठी कुछ सिल रही है। अम्मा रात के जूठे बर्तन मांज रही हैं सोचती हुई। दास भैया गुमसुम बैठे हैं। मैं जगा हूं।

गला साफ करते हुए दास भैया के सिले होंठ हिलने लगे—

पप्पू स्कूल जाता है?'

हां।

तुम उसी पाठशाला में पढ़ाते हो?

हां।

तुमने फिर प्राइवेट इम्तहान तो पास नहीं किया होगा न!

मैंने सिर हिलाया— नहीं।

दो चार ऐसी ही औपचारिक उखड़ी उखड़ी बातों के बाद दास भैया चुप हो गए।

सुबह उठकर देखा—दास भैया की चारपाई के पास सिगरेट के ढेर। पचास-साठ टुकड़े बिखरे पड़े हैं। रात भर वे करवटें बदलते रहे। एक बार उठकर छत पर भी गए। फिर मौन बैठ गए नहीं।

घुप् अंधियारे में जोने की तरह सिगरेट की आग कभी चमकती, कभी मद्धम पड़ जाती।

पहले अम्मा रोज कहती थीं—बिन्नू एक बार कभी घर आए तो उसके बच्चे उसे सौंप कर गंगा नहा लूं। अम्मा बुढ़ापे का भरोसा क्या! किसी घड़ी आंखें मुंद गईं तो इन सबका क्या होगा! लेकिन उसे तो कुछ फिकर ही नहीं! रत्ती भर भी फिकर होती तो एक बार घर न आता! दो चार पैसे ही कभी बच्चा के लिए नहीं भेजता! परदेस कौन नहीं जाता पर या कलेजे पर पत्थर बांध कर भला कौन बैठता होगा! ऐसे—पेड़े जैसे बच्चे! वह है कि न जाने क्या विराग ले बैठा है! किसी दिन जोग न ले ले!

अम्मा फिर मेरी ओर देखती— एक तू है!—गुमसुम बना रहता है ठूंठ की तरह! चिट्ठी भी नहीं गेरता! तू चिट्ठी देता तो क्या वह जवाब भी नहीं लौटाता! बिन्नू को मैं जाने हूं। ऐसा निठोर तो कभी न था! भला अपनी कोख की सन्तान के लिए! कहते-कहते अम्मा की आंखें निराधार शून्य पर अटक जातीं।

फिर इधर थोड़े दिनों से अम्मा रट लगाए थीं— बिन्नू का पत्ता तू जाने है सुनील! मुझे पहुंचा दे। एकाध महीना वहीं कट जाएगा। सत्तो की काकी कहती थी कि उधर जमनाजी पास हैं। कभी नहा लूंगी—अपने बिन्नू के परसाद। कौन जाने वहीं मर पड़ी तो जमनाजी में तो बहा ही देगा! पर ऐसे धन्न भाग कहं!

अम्मा के मस्तिष्क में दिन रात सुबह शाम आठों-पहर दास भैया के बारे में ही विचार उमड़ते रहते। अम्मा की रुग्णता का कारण केवल दास भैया है। कितनी बार समझाया—बुझाया। मैंने। मामा जी ने। लेकिन फिर—बिन्नू बिन्नू!!

खाने के लिए चौके पर बैठता तो हर रोज अम्मा भाजी परोसती रोटी बेलती दाल छौंकती गुनगुनाती रहती— मैं मर जाऊंगी तो मेरे बिन्नू

बच्चों का क्या होगा रे सुधीस ! अम्मा फिर मेरी गम्भीर आकृति का भाव ताड़ जातीं। चुप हो जातीं। पर दूसरे ही क्षण कह उठतीं— बिन्नू वाले का क्या करता होगा! वैसे ही कित्ता लापरवाह है! लोग कहते हैं गांव-गांव घर घर घूमने फिरने की नौकरी है। कौन जाने कैसा सुनर है! कौन उसकी रोटियां सेंकता होगा! कौन देख रेख करता होगा! कमा ही भूखा पड़ा रहता होगा!

और फिर आंखें पोंछती मनमाने दुहरा डालती— क्या पता नौकरी है भी या नहीं! कहीं या ही तो फिरा नहीं करता बावरा! कभी आए तो पूछूं! लेकिन !

दास भैया को आए अब इतने रोज हो गए। पर अम्मा ने एक बार भी पूछा नहीं। एक बार भी कहा नहीं। कितनी बार दास भैया के कमरे में जाती हैं पर बस लौट आती हैं। आंखें मूंदे फिर एकान्त में अपने आप बड़बड़ाती रहती हैं। अकारण अपने से बातें करती रहती हैं।

हमेशा की तरह सुबह होती है। दिन ढलता है। रात घिरती है— रोज-रोज बस! दास भैया जैसे आए वैसे नहीं आए। कोई बदलाव कहीं नहीं। वही उदासी! वीरानी!

पाठशाला की परीक्षाएं अब समीप हैं। ट्यूशनों में भी इधर अधिक समय देना पड़ता है। सुबह निकल जाता हूं तो सूनापन रहता है घर पर। और रात को वही श्मशान की सी उदासी!

दास भैया कितनों दिनों की छुट्टियों में आए! अब तो काफी अर्सा हो गया।—मैं सोचता सोचता एक दिन घर लौट रहा था। अन्दर पहुंचा ही था कि पप्पू भागता हुआ आया। पांवों पर जोर से लिपट पड़ा— अचरा!

मैंने उसे गोदी में उठाया ही था कि वह फिर चहका—अ-न-रा! उसका स्वर भीगा-सा था। सूरत—रूआंसी—रुलाई भरी।

क्यों क्या हुआ रे! उसके बिखरे बालों को अंगुलियों से संवारते हुए पूछा। पर वह बोला नहीं। कन्धे में मुंह छिपाए चुपचाप रो पड़ा।

क्या हुआ ? मैंने आश्चर्य से पूछा। इस बार वह बोलने के बदले और जोर से फफक पड़ा।

क्या हुआ नीना ! पप्पू को किसने मारा !—सुने !

नीना बेसन से सने हाथ लिए नंगे सिर मसी ही रसोईघर से बाहर निकल आई। मामा हमने कुछ नहीं कहा। क्षीण-स्वर में वह बोली— सुबह सिगरेट के बिखरे टुकड़े बटोर रहा था। फिर चूल्हे से आग जलाकर कोने में छिपा पी रहा था। पापा ने धमकाया तो रोने लगा। सुबह से अभी तक इसने खाया नहीं। केवल मक्का मक्का कह कर रोता है। पापा ने कितना मनाया। पैसे दिए। लेकिन इसने छुआ तक नहीं।

'अच्छा, तो यह बात है। हमारे पप्पू बेटा को हमारी गैरहाजरी में तुम सब लोग पीटा करते हो न ! अब किसी ने हाथ उठाया तो बुरी बात होगी। नीना ला भैया के लिए रोटी ! कहता हुआ मैं छत पर चला गया। पप्पू अभी तक भी सिसक रहा था गोदी में बैठा।

मैं रोटी खिला रहा था तो वह एकाएक उचक उठा— मक्का, उड़ने वाला उड़ने मक्का ! पप्पू मेरे मुंह की ओर गुस्से से ताकता हुआ बोला।

किसने मारा राजा बेटा को !

उड़ने ! उसने नीचे कमरे की ओर इशारा किया, उड़ने !

पापा बहुत बुरे हैं न ! हमारे राजा बेटा को इस तरह मारा करते हैं।

पापा बहुत बुरे हैं—मक्का ! वह फिर सिसक पड़ा हम रोटी नहीं देंगे। दूध नहीं देंगे। वे बहुत बुरे हैं ! बहुत ! जोर से वह रो पड़ा।

बड़ा मुश्किल से मनाया। रोटी खिलाकर फिर निकल पड़ा बाहर। एक ट्यूशन अभी और पूरा करना था।

दाम भैया अभी तक भी आज लौटे न थे। सुना था सुबह निकल

गए थे, बिना खाए ही। अम्मा अभी तक सुबह की रोनी सी बैठी थीं।

लौग तो काफी रात हो गई थी। अम्मा बर्तन मांज चुकी थी। नीना बाहर खाट पर पढ़ती-पढ़ती, किताबों में माथा टिकाए ऊंघ रही थी। दाम भैया के कमरे से कोमल सी-सी आवाज आ रही थी। सिगरेट धुंआ उगल रही थी।

'तू हमारे साथ चलेगा ?'

'ना।'

'तुझे अब नहीं मारेंगे—हां!'

'   !'

'नीना के साथ रोज स्कूल जाता है ?'

'हां।'

'नीना से झगड़ता तो नहीं ?'

'ना।'

'तुझे दूध मिलता है ?'

'   ना   ।'

'अपनी अम्मी की याद नहीं आती कभी ?'

'   ।'

'कभी नहीं आती ?'

'   ।'

'कभी भी नहीं!'

'   !'

पिछली रात से आसमान घिरा है। सुरमई बादल बरसे नहीं हैं। फिर भी बरसात के आसार तो अलबत्ते ही हैं। सुबह लगा कि कहीं कहीं कुछ बूंदाबांदी-सी हो रही है। पाठशाला की परीक्षाएं प्रारम्भ हो गई हैं। घर में पता नहीं। अम्मा ने बड़े सुरज का भरोसा क्या!

मुन्ना जल्दी-जल्दी खाट पर कपड़े डालकर जूते पहन रहा था। तभी "मुन्नी

खुशी ! कहती अम्मा कमरे में चली आई।

बिन्नू आज जाने को कहता है! अम्मा की आवाज़ भर्रायी थी।

क्या आज ही चल जाने को कहते हैं ? तनिक विस्मय से मैंने पूछा।

हां।

तो शाम की बस से चले जाएंगे! जल्दी क्या है! तब तक मैं भी लौट आऊंगा।

'यही तो कह रही हूं। मानता नहीं। आहत स्वर मे अम्मा बोलीं, 'कल बतला देता तो रास्ते के लिए चबेना बना देती। अभी के लिए कुछ खाना तयार कर देती। लेकिन वह तो जिद पर है। भूखा ही चले जाने को कहे है ! अम्मा का स्वर आर्द्र था। आंखों म अजब-सी बेबसी ! अजब-सा सूनापन ! जो अब और भारी हो आया था।

तसमे बांधकर दास भया के कमरे की ओर बढ़ा। लेकिन कमरा खाली था। फिर छत पर देखा। दास भया धोती पहने नगे बदन आंखें मीचे मुंडेर पर बठ दातुन कर रहे हैं। सामने पानी की बाल्टी है। लोटा तौलिया है। लेकिन उन्हें सुध नहीं।

"दास भैया !

दास भया ने दातुन के छिलके थूकते हुए आंखें खोली। उनका चेहरा आज सच ही बहुत भारी था।

'शाम या कल सुबह की बस से जाकर नहीं हो सकता ! अम्मा कुछ चबेना बना देंगी। भूखे जाना भी ठीक नहीं। शाम तक मैं भी लौट आऊंगा। वैसे कल तो मेरी भी छुट्टी है।

दास भया मेरे मुंह की ओर ताकते रहे। अच्छा ऽ ! नपा-तुला संक्षिप्त-सा उत्तर दे के चुप हो गए।

दूसरे दिन सुबह वैसे ही सिलवट-पड़े कपड़ों स ढके दास भया तैयार खड़े हो गए। अम्मा ने पौ फटने स पहले ही जग कर रसोई का काम शुरू कर दिया। पप्पू भी खटर-पटर सुन कर आज और दिनों से जल्दी

जाग गया था। नगा ही चौके में घुसकर गुमसुम बैठा था। टुकुर
टुकुर बड़ी-बड़ी आंखों से सब देख रहा था। नीना अम्मा का हाथ बटा
रही थी।

जहां तक बन सका अम्मा ने आज वे सारी चीजें बनाई जो दास
भैया को पसन्द थी। रायता था। साबुत उरद की दाल थी। कुछ तले
पापड़ थे। बड़िया थी—जिनमें दास भैया के कारण नमक ज्यादा छोड़ा
गया था। पर दास भैया ने दो-तीन टुकड़े मुश्किल से तोड़े होंगे। ऐसे
ही खाने का स्वांग कर हाथ धोया और बाहर आ गए।

कमरे में खड़े-खड़े छत की ओर न जाने क्या ताकने रहे।

दास भैया तैयार तो हो गए, पर जाने का खरचा है भी या नहीं।
मैं बाहर खड़ा सोचता रहा। असमंजस में डूबा कुछ भी निर्णय न कर
पाया।

"दास भैया पैसे हैं?' बड़ी मुश्किल से मैंने पूछ ही लिया।

सहसा मुड़कर मेरी ओर देखा उन्होंने, क्या तुझे चाहिए?" यों
ही अधर खुल-से आए। पीले पीके दांत थोड़-से चमके। फिर भिच गए।

मैं हंस पड़ा। नहीं तो! मेरा मतलब खरचे से है। आपके जाने
के !

वे कुछ बोल न पाए। खड़े देखते रहे। सोचते रहे। फिर मेरी
ओर देखते हुए खिसियानी भरी मुस्कान होंठों पर लाने की चेष्टा करते
हुए बोले— तेरे पास हैं कुछ पैसे! शायद कम पड़ेंगे।' दास भैया
बड़ी मुश्किल से कह पाए—इतना मात्र! चेहरा अबोध बालक की
तरह था—निर्विकार शांत सहमा हुआ।

दूकान से मिल बीस रुपए बचे थे। जो राशन वाले के लिए रख
छोड़े थे। वे ही दो नोट मैंने सन्दूक से निकाल कर आगे बढ़ा दिए।

पर खरचे के लिए कम पड़ेंगे लो!

नहीं, नहीं! खरचा चल जाता है। पैसे और हैं।' टालते हुए
मैंने कहा। और कहता भी क्या!

सुसी ! कहती अम्मा कमरे में चली आई ।

बिन्नू आज जाने को कहता है ! अम्मा की आवाज़ भर्रायी थी ।

क्या आज ही चले जाने को कहते हैं ? तनिक विस्मय से मैंने पूछा ।

हाँ ।

'तो शाम की बस से चले जाएंगे ! जल्दी क्या है ! तब तक मैं भी लौट आऊंगा ।

'यही तो कह रही हूं । मानता नहीं । आहत स्वर में अम्मा बोलीं, 'कल बतला देता तो रास्ते के लिए चबैना बना देती । अभी के लिए कुछ खाना तैयार कर देती । लेकिन वह तो जिद पर है । भूखा ही चले जाने को कहे है ! अम्मा का स्वर आर्द्र था । आंखों में अजब-सी बेबसी ! अजब-सा सूनापन ! जो अब और भारी हो आया था ।

उन्हें बाधकर दास भैया के कमरे की ओर बढ़ा । लेकिन कमरा खाली था । फिर छत पर देखा । दास भैया धोती पहने नंगे बदन आंखें मींचे मुंडेर पर बैठ दातून कर रहे हैं । सामने पानी की बाल्टी है । लोटा तौलिया है । लेकिन उन्हें सुध नहीं ।

दास भैया !

दास भैया ने दातून के छिलके थूकते हुए आंखें खोलीं । उनका चेहरा आज सच ही बहुत भारी था ।

'शाम या कल सुबह की बस से जाकर नहीं हो सकता ! अम्मा कुछ चबेना बना देंगी । भूखे जाना भी ठीक नहीं । शाम तक मैं भी लौट आऊंगा । वैसे कल तो मेरी भी छुट्टी है ।

दास भैया मेरे मुंह की ओर ताकते रहे । अच्छा ऽ !' नपा-तुला संक्षिप्त-सा उत्तर दे के चुप हो गए ।

दूसरे दिन सुबह उठते ही सिलवट-पड़े कपड़ों से ढके दास भैया तैयार खड़े हो गए । अम्मा ने भी पटने से पहले ही उठ कर रसोई का काम शुरू कर दिया । पप्पू भी खटर-पटर सुन कर आज और दिनों से जल्दी

भाग गया था। नगा ही चौके में घुसकर गुमसुम बैठा था। टुकुर टुकुर बड़ी-बड़ी आंखों से सब देख रहा था। नीना अम्मा का हाथ बटा रही थी।

जहां तक बन सका अम्मा ने आज वे सारी चीजें बनाईं जो दास भैया को पसन्द थीं। रायता था। साबुत उरद की दाल थी। कुछ तले पापड़ थे। बढ़िया थी—जिनमें दास भैया के कारण नमक ज्यादा छोड़ा गया था। पर दास भैया ने दो-तीन टुकड़े मुश्किल से तोड़े होंगे। वैसे ही खाने का स्वांग कर हाथ धोया और बाहर आ गए।

कमरे में खड़े-खड़े छत की ओर न जाने क्या ताकते रहे।

दास भैया तैयार तो हो गए, पर जाने का खर्चा है भी या नहीं। मैं बाहर खड़ा सोचता रहा। असमंजस में डूबा कुछ भी निर्णय न कर पाया।

"दास भैया पैसे हैं?" बड़ी मुश्किल से मैंने पूछ ही लिया।

सहसा मुड़कर मेरी ओर देखा उन्होंने, "क्या तुम्हें चाहिए?" यों ही अधर खुल-से आए। पीले फीके दांत थोड़े से चमके। फिर भिंच गए।

मैं हंस पड़ा। "नहीं तो। मेरा मतलब खर्च से है। आपके जाने के ...।"

वे कुछ बोल न पाए। पड़े देखते रहे। सोचते रहे। फिर मेरी ओर देखते हुए खिसियानी भरी मुस्कान होंठ पर लाने की चेष्टा करते हुए बोले—"मेरे पास हैं कुछ पैसे। शायद कम पड़ेंगे।" दास भैया बड़ी मुश्किल से कह पाए—इतना मात्र। चेहरा अबोध बालक की तरह था—निर्विकार शांत सहमा हुआ।

ट्यूशन से मिले बीस रुपए बचे थे। जो [illegible] के लिए रख छोड़े थे। वे ही दो नोट मैंने संदूक से निकाल कर आगे बढ़ा दिए।

"पर खर्च के लिए कम पड़ेंगे तो!"

"नहीं नहीं! खर्चा कम आता है। फिर और हैं।" [illegible] मैंने कहा। और कहता भी क्या!

परिणति

वितस्ता ने जाली के बेल-बूटे वाले रंगीन भारी पर्दे रिंग पर एक ओर समेटे तो देखा—दूर गेट के पास कोई छाया-सी खड़ी है। व्यस्तता के कारण उधर अधिक ध्यान न दे पायी। यों ही देखा-अनदेखा करके ड्राइंग-रूम की ओर चली गयी। उसका मन आज न जाने क्यों इतना भारी उदास है। कहीं भी जी लगाए लगता नहीं।

नाश्ते की प्लेटें लगी थीं। भर्दई कन्धे पर गमछा लटकाए बड़े अदब से ठहर-ठहरकर गिलासों में जल भर रहा था। एक भी बूंद धोखे-से टेबिल-क्लाथ पर बिखरी नहीं कि उसे बड़ी शालीनता के साथ गमछे में समेट लेता।

चिरन्तन ने समाचार-पत्र परे रखते हुए एक हल्की-सी अंगड़ाई ली। इधर-उधर देखा तो निगाहें वितस्ता पर ठहर गयीं। सामने की कुर्सी पर वह गूंगी-दुलहिन की तरह होंठ सिये चुप बैठी है। दोनों कुहनियां मेज पर टिकाए हथेलियों में ठोड़ी थामे आंखें मूंदे पता नहीं क्या सोच रही है। इस तरह से जब कभी वह किसी भाव में लीन रहती है तो

उसकी यह भंगिमा चिरंतन को बहुत अधिक भाती है।

वितस्ता घर-बाहर का सारा काम-काज जानती है। कला के प्रति उसकी अभिरुचि है। वह बहुत मीठा गाती है। सितार बहुत अच्छा बजा लेती है। अपने धुंधुदे अंधेरे कमरे में जब कभी सांझ के समय वह, तन्मय होकर तारों को छेड़ती है तो प्रशान्त वातावरण में एक लहर-सी दौड़ जाती है। एक अजीब सी वेदना कण-कण में व्याप जाती है। घण्टों तक पता नहीं कब तक उसकी संगमरमर-सी सफेद तरासी हुई बारीक लम्बी नाजुक उंगलियां तारों को सहलाती रहती हैं। धीरे धीरे हवा थम जाती है। उंगलियां ठहर जाती हैं। सितार के झनझनाते तार कपकपाना छोड़कर सांस साधे रुक-से जाते हैं। वितस्ता गरदन झुका लेती है। माथा सितार पर टिका देती है। तब उसकी आकृति भाव-शून्य हो जाती है। एकदम प्रतिमा की तरह शान्त। किन्तु दूसरे ही क्षण ज्योंही गरदन ऊपर उठाती हुई जोर से पलकें मींचती है कभी-कभी बूंद भर खारा पानी आंखों से उतरकर गालों पर ढुलक पड़ता है।

सच कितनी विचित्र है वितस्ता ! चिरंतन क्षण भर उसे देखता रहा। फिर हौले-से कुर्सी से उठकर उसके पीछे खड़ा हो गया। उसके कन्धों पर बिखरी घुंघराली लटों को सहलाता हुआ, उसकी आंखों की गहराइयों में कुछ टटोलने लगा।

वितस्ता ने भी उसी भाव से गरदन ऊपर उठायी तो चिरंतन ने सामने घिरा और अपने दोनों हाथों में भर लिया— क्या सोच रही हो बिन्नी ?

वितस्ता ने केवल सिर हिलाया— 'जी, कुछ भी नहीं।'

'कुछ तो !'

ना।

"चुप ! चुप !' कहता हुआ वह और झुक गया और अपने धधकते होंठ उसके रक्तिम कपोलों पर रखने ही वाला था कि तभी दरवाजे की निगोड़ी कॉल-बेल टनटनाई। अचकचाकर, सम्हलकर दोनों बाहर की ओर

मानने लगे जैसे कहीं चोरी न पकड़ ली गयी हो।

मदई टिकोजी से ढका टी-पाट खाता-खाता ठहर गया। साहब को कहीं उठकर देखने का कष्ट न हो अतः स्वयं मदई ही दरवाज़े की ओर मुड़ा।

'कहिए!'

'मिस्टर चिरन्तन हैं?'

'आइए।'

मदई ने जैसे खाना-पूरी की। वैसे ही मुंह लटकाए कहा। वास्तव में मदई को इस आकृति में तनिक भी नवीनता नहीं दीखती। अक्सर वक्त-बेवक्त इसी तरह घण्टी बजती है। नाइलॉनी साड़ी में लिपटी पर्स हाथ में झुलाती लिपिस्टिक-पुते अधरों से मुस्कराती कोई [illegible] आती है और बेधड़क चिरन्तन के कमरे में चली जाती है।

चिरन्तन के विवाह के बाद आज बहुत दिनों पश्चात् वह पहली बार आयी है। अतः आकृति में कुछ असमंजस का अटपटा भाव है। पांवों में अनिश्चितता। वे सधे ढंग से आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ नहीं पा रहे हैं।

'आइए! आइए!' चिरन्तन ने आगे बढ़कर स्वागत किया—'कम इन! आप दोनों का परिचय करा दूं! आप हैं कुमारी जुबेन और आप यानी कि... यानी कि... आइ मीन...!'

'समझी समझी!' कहकर सामने खड़ी कुमारी ने वितस्ता की ओर मुस्कराकर देखा। अभिवादन किया और बड़े तपाक से हाथ मिलाया।

टेबिल पर तीनों बैठकर बड़ी बेतकल्लुफ बातें करने लगे। वितस्ता कुछ कम बोलती अपने स्वभाव के अनुसार पर चिरन्तन और जुबेन साहित्य से लेकर सेक्स तक हर टॉपिक पर देर तक निस्संकोच बातें करते रहे। वितस्ता को बड़ा आश्चर्य हुआ कि कोई नारी किसी पर पुरुष से इतनी स्पष्ट बात कर सकती है।

किसी काम के बहाने उठकर वितस्ता दूसरे कमरे में चली गयी। माई को गमलों पर पानी देने और फर्श को साबुन से धोने के बारे में कुछ हिदायतें देती रही। फिर रसोई घर में घुसकर सारा काम स्वयं देखने लगी।

धुएं के कारण उसकी आंखों में पानी भर आया। आंचल से पलकें पोंछती जब वह ड्राइंग रूम की ओर लौट रही थी कि उसकी आंखों के आगे बिजली-सी कौंधी। उसके चलते पांव एकाएक ठहर गये—एकदम चेतना शून्य हो गये।

जुबेदा चिरन्तन की बाहों में घिरी थी और वह उसकी काली बिखरी जुल्फों को हाथों में समेटे था।

तीनों प्राणी—जो जहां पर थे वहीं पर सुन्न खड़े रह गये। न चिरन्तन कुछ बोला न जुबेदा कुछ कहने का साहस जुटा पायी और न वितस्ता ने ही कुछ कहने की आवश्यकता अनुभव की।

शाम को चिरन्तन का मन घर लौटने को न था। फिर भी वह लौट रहा था। अनेक आशंकाएं उठ रही थीं। वितस्ता से सामना कर पाने की हिम्मत न थी। सुबह के अपने व्यवहार से वह बेहद क्षुब्ध था। उसे स्वयं पर झुंझलाहट हो रही थी कि वह ऐसा अभद्र व्यवहार क्या कर बैठा। विवाह हुए अभी दिन ही कितने बीते हैं। फिर ऐसी हरकतें क्या शोभा देती हैं। इतनी बड़ी नौकरी है इतना बड़ा जिम्मेदारी का ओहदा है शान है शोहरत है आगे नाम है। फिर यह! वितस्ता क्या सोचती होगी। उसके स्थान पर कोई और होती तो क्या मानती!!

उसने जब घर की देहरी पर पांव धरा तो चारों ओर रोज की तरह सन्नाटा था। वितस्ता अपने कमरे में खिड़की के पास सितार सहला रही थी। दर्द की एक हलकी सी लहर वायु में घुल घुमकर एक वीतरागी करुण-दृश्य रच रही थी।

दरवाजे को खोलने की खटक और सीमेंट के फर्श पर जूता की

आहट से वितस्ता की तन्द्रा टूटी। वह लपककर आगे बढ़ी। हमेशा की तरह मुस्कराती सामने खड़ी हो गयी। बोली—'बड़ी देर कर दी आज!

चिरन्तन चुप था। कुर्सी पर बैठा ही था कि वितस्ता उसके पाँवों के पास फर्श पर बैठ गयी। जूते के तसमे खोलने लगी। फिर निश्चित स्थान पर जूते रखकर कुर्सी के सहारे उसके सामने खड़ी हो गयी। बोली— तबीयत तो ठीक है न!

प्रत्युत्तर में चिरन्तन से कुछ भी कहा न गया।

वितस्ता उसके ठण्डे माथे को अपनी गरम हथेलियों से सहलाने लगी— इतनी रात बाहर रहते हो तभी तो सेहत खराब रहती है। मैं न जाने कब से खिड़की पर खड़ी-खड़ी प्रतीक्षा करती थक गयी। किताबें उलटने लगी तो मन लगा नहीं। सितार भी कब तक बजाती!

चिरन्तन अपलक उसकी ओर देखता रहा। न मालूम एक साथ कितनी परछाइयाँ कितने भाव कितने विचार मन से उभर-उभरकर धूप-छाँव की तरह आए और ओझल हो गये।

अभी तक भी चिरन्तन को चुप देखकर वितस्ता उसके और समीप खिंच आयी। उसके घुँघराले बालों को छल्ले की तरह उँगलियों में लपेटती खिलेरती रही। फिर सामने खड़ी, उसकी टाई की गाँठ खोलने लगी— "कितनी ज़ोर से बाँधते हैं आप! गरदन में दर्द नहीं होता!

।

'चलो उठो न! खा लो। कब से पड़ा-पड़ा ठण्डा हो गया। कितनी मेहनत से आज खुद ही सब्जी खरीदकर लायी, खुद ही बनायी। पर सब...! वह चिरन्तन का हाथ थामे उठाने लगी।

चिरन्तन को इस सब की कल्पना तक न थी। न वितस्ता घर पर बैठी थी। न घर में अँधेरा था। न उसके घर पहुँचते ही वह बिफरी। न उसने रोते हुए ही यह कहा कि सुनिए, मुझे मेरे मैके पहुँचा दीजिए।

इतक ही लगाना था तो फिर ब्याह क्यों किया ? किसी एक की जिन्दगी से यों खिलवाड़ करके आपको क्या मिला !

पर वितस्ता चुप थी। उसकी निर्विकार सुशान्त सुनिश्चित आकृति की ओर वह न मालूम इस तरह से क्या देखता रहा ! और फिर पालतू पशु की तरह चुपचाप उठा और पीछे-पीछे चल दिया।

निवाल तोड़-तोड़ कर, अबोध शिशु की तरह वितस्ता उसे खिलाने लगी।

तुमने खा लिया ?

जी खा लूंगी। इतनी जल्दी क्या है ! पहले आप लीजिए न !"

चिरन्तन की निगाह घड़ी की ओर मुड़ी— तुम्हें खाकर सो जाना चाहिए था। खाना भाई खिला देता या सुजानो। इतनी जल्दी काम काज समाप्त करके घर चली गयी क्या ?

क्यों खिला देती जी कोई—होते हुए मेरे ! वितस्ता कहकर भी कह न पायी। केवल बुदबुदाकर चुप हो गई।

चिरन्तन ने कौर के साथ-साथ दो-तीन बार उसकी पलाशबीन-सी पतली नाजुक उंगलियां भी काट डाली। अंतिम ग्रास के साथ वह शरारत से मुस्कराता हुआ वितस्ता के होंठों के पास मुंह ले गया तो वितस्ता चौंक कर पीछे हट गयी। चिरन्तन के मुंह से शराब की बदबू आ रही थी।

क्या हुआ ?

'जी कुछ नहीं। वितस्ता हंस पड़ी। वह हंसी उसके दिल की और मन पता नहीं किस गहराई से निकली थी।

सोते समय वितस्ता उसके माथे को सहलाती रही। चिरन्तन के मन में न जाने कौन-सा ज्वार उमड़ रहा था। न जाने कौन सा झंझावात उसे झकझोर रहा था। शायद उसके अन्तःकरण की अपराध भावना उसे मथ रही थी। शायद वह होश में नहीं था— 'तुम बहुत भोली हो। हो न ! वह मुस्कुराया— 'लेकिन जुबैदा तुमसे भी ।'

वह चुप थी। चिरंतन भी।

क्या जी वह आपको बहुत अच्छी लगती है?

हां।

क्या खासियत है उसमें?

खासियत! वह बड़े जोर से बड़े भद्दे ढंग से हंसा— कोई जवान हो। उस पर लड़की हो। उस पर खूबसूरत हो यह क्या कम है! लेकिन एक बार चिरंतन बोला—शायद अब वह बिलकुल होश में न था— शी इज रियली स्वीट! वह बड़े मोहक ढंग से मुस्कराती है हंसती है बातें करती है चलती है। उसके चिकने सुडौल गोरे शरीर में सांप की केंचुली-सी बारीक नाइलॉन की फिसलती हुई साड़ी खूब फबती है। वह बड़ी स्टाइल ढंग से स्मोक करती है। कंस हौंस और शराबी निगाहों से देखती हुई शाम्पेन के ! ओह शी इज रियली स्वीट! उसने जोर से वितस्ता को अपनी ओर खींचा जैसे सामने वितस्ता नहीं जुबेदा ही हो और फिर आंखें मूंदे जोर से उसे चूमता हुआ फुसफुसाया—स्वीट! सो स्वीट!! सो स्वीट!!!

लेकिन दूसरी ओर वितस्ता का मन चीत्कार कर उठा। वह वैसी ही बेबस पड़ी रही। चिरंतन जब थक कर सो गया तो वह धीरे से अपने कमरे में गयी और फिर सारी रात सितार उसकी बांहों में लिपटा न जाने क्यों रोता रहा।

सुबह फिर ताजे फूल की तरह वितस्ता ताजी थी। बड़े प्यार से उसने चिरंतन को जगाया। बिस्तरे पर ही कॉफी का गरम प्याला उसके होंठों से लगाती हुई बोली— देखिए आप कितने लापरवाह हैं! एक तो आफिस में काम बहुत रहता है दूसरे रात को देर तक जागते रहते हैं। इससे सेहत खराब हो जाती है। देखो न आपकी आंखें कितनी लाल हैं—सूजी हुई। वितस्ता पास ही मेज पर रखा शीशा उसके सामने उठा लायी। पर चिरंतन शीशे की ओर नहीं केवल उसकी

आकृति की ओर देखता हुआ हंस पड़ा। वितस्ता की समझ में कुछ न आया। चिरन्तन ने शीशे का मुंह वितस्ता की ओर कर दिया और कॉफी का गरम प्याला उसके हाथों से थाम लिया।

वितस्ता सचमुच वितस्ता लगती न थी। उसका चेहरा बेहद सूजा हुआ था। आंखें गुड़हल के फूल की तरह सुर्ख थीं।

'लगता है रात भर जागती रही?'

'नहीं तो!

फिर?'

'फिर क्या?' यों ही हंसने का प्रयास करती वितस्ता ने कहा—"मेरी आंखें इधर बहुत कमजोर हो गयी हैं न! तभी तो थोड़े से ही शीत में सूज जाती हैं।

चिरन्तन ने दो ही घूंट में प्याला रीता कर लिया। वितस्ता ने फिर कोई बात न की। केवल चुपके से रीता प्याला उठा कर चली गयी। बाथ-रूम में आदमकद शीशे के सामने अपना प्रतिबिम्ब तौलने लगी—सचमुच उसकी उदास आंखें भरे घड़े की तरह सहमा छलछला आयीं। अपने को सम्हालती हुई वह भागी बाथ रूम गयी। किवाड़ भीतर से बन्द कर खूब जी भर रोती रही।

अन्त में, हल्की होकर नहा धोकर वस्त्र बदलकर नाश्ते की मेज पर आयी तो देखा चिरन्तन बैठा प्रतीक्षा कर रहा है। ऐश-ट्रे में अधजले सिगरेट के ढेर सारे टूट-फूटे पड़े रह हैं और अभी तक वह लगातार धुआं उगल रहा है।

उसे देखते ही चिरन्तन का मूड बदल गया—'आज तो तुम बहुत खूबसूरत लग रही हो।' पूरी की पूरी सिगरेट उसने ऐश-ट्रे में डुबो डाली और फिर झट छुरी चम्मच लेकर डबल रोटी के कटे टुकड़ों पर मक्खन की मोटी मोटी परतें चढ़ाने लगा—'आज तो एकदम फ्रेश नजर आती हो। कलर-फुल नाइलॉन का ...। नाइलॉनी साड़ी, इतना शोख पुल-ओवर पहने हो और इतनी गहरी

लिपिस्टिक कि जुबेगा भी पानी भरने चली जाय।

वितस्ता लाज से सिकुड़ कर चौथाई रह गयी।

कौन सा जानती हो ?

यस जानती तो नहीं। आप कहेंगे तो सीख लूंगी।

चिरन्तन फिर सिगरेट जला चुका था। धुएं के गोल-गोल छल्ले एक के बाद एक छत की ओर उड़ाने लगा। वितस्ता प्यालियों में दूध डाल कर फिर चम्मच से उन्हें हिलाने लगी। आज ठण्ड कुछ अधिक थी। इसलिए उसका तन कपकपा रहा था।

चिरन्तन के मुंह से सिगरेट छीन कर वितस्ता ने अपने रंगीन अधरों पर लगाया। एक कश जोर से खींचते हुए कहा — वह ऐसे ही पीनी है! कहिए न अब तो आपको अच्छी लग रही हूं! तभी खांसी शुरू हुई। वह इतनी जोर से इतनी देर तक लगातार खांसती रही कि उसकी आंखों में पानी भर आया। किन्तु दूसरी ओर चिरन्तन ठहाके लगाता रहा।

चिरन्तन आफिस जाने लगा तो आज वितस्ता उसे छोड़ने कार तक गयी। जाते समय अपनी नाजुक उंगलियां हवा में हिलाती हुई बोली— देखिए आज आफिस से सीधे घर आइएगा। कहीं जाना चाहेंगे तो मैं भी साथ चलूंगी।

दू । कुछ बढ़ने लगी तो वितस्ता की आवाज उसी अनुपात से ऊंची हो आयी जैसे चिरन्तन को कुछ कम सुनायी पड़ता हो — आज आपसे कुछ बहुत जरूरी बातें करनी हैं। ठीक छह बजे पहुंच जाना है।' यह लपक कर और पास चली आयी। उसके कन्धों पर झुकती हुई बोली— दिन भर अकेली बैठी-बैठी बोर हो जाती हूं। यदि दिन में कभी आपको फोन कर लूं तो आप डिस्टर्ब तो न होंगे। बुरा तो नहीं मानेंगे।

शाम को चिरन्तन आफिस से उठ कर सीधा घर चला आया। वितस्ता पलकें बिछाए पांच बजे से ही द्वार पर खड़ी थी। चिरन्तन को

देखते ही उसकी उदास आँखें चमक उठीं। वह लपक कर आगे बढ़ी और उससे लिपट पड़ी।

पास ही मदई फूलों में पानी दे रहा था, यह सब देख रहा था। अत उसकी ओर दृष्टि जाते ही वह शर्म से लाल हो लपक कर भीतर चली गयी। मदई भी अपने को भींपता पानी का फव्वारा थामे दूसरे कोने में खड़ा हो गया।

वितस्ता ने एक बहुत सुन्दर कलात्मक नया अलबम उसके सामने बढ़ाया, खाली बैठ बैठ क्या करती! आपके बक्स में कितने सुन्दर-सुन्दर फोटो यो ही घास फूस की तरह ठुसे थे। सोचा उन्हें ही ठीक कर दूं।'

उन्हें देखते ही चिरन्तन को कुछ कहते न बना। वह मौन भाव से, दार्शनिक-ढंग से पन्ने पलटता रहा। ये वे चित्र थे जो उसकी पूर्व प्रेमिकाओं ने अमित-स्नेह के साथ कभी समर्पित किये थे।

कोई नारी ऐसा व्यवहार भी कर सकती है, वह सोच नहीं सकता था। पर यह वितस्ता नाम की लड़की वस्तुत क्या है—उसकी समझ में न आता था।

'इन्हें देख कर तुम्हें ईर्ष्या नहीं हुई?'

'ईर्ष्या क्यों हो भला! वह सहज भाव से वितस्ता कहने लगी—'जो आपको प्रिय हैं वे सब मुझे भी प्रिय हैं। जिन्हें आपने अपने प्राणों से भी अधिक चाहा, मेरे लिए उनका मूल्य मेरे प्राणों से भी अधिक क्यों न हो! विवाह की वेदी पर परमात्मा को साक्षी रख कर मैंने सौगन्ध खाई है कि जिस ढंग से आप सुखी रहें, जो आपको अच्छा लगे उसी को अच्छा मान कर आपके चरणों पर बैठी, जीवन-पर्यन्त आपकी सेवा करती रहूंगी। मेरी दुनिया का सारा संसार आप पर केन्द्रित है—केवल आप पर!' वितस्ता की आवाज भारी हो गयी।

दूसरे दिन रविवार की छुट्टी थी। चिरन्तन लॉन में बेंत की कुर्सियां डाल धूप सेंकता हुआ मैगजीन के पन्ने पलट रहा था। और पास ही वितस्ता उसके लिए रोएँदार मुलायम ऊन का पूरी आस्तीन का

स्वेटर बुन रही थी और बार-बार घड़ी की ओर देख रही थी।

आज भी आपको आफिस जाना है! सच कह रहे हैं!

हाँ, तो ऽ!

मैं सोच रही थी, आज आपके पसन्द की डिश बनाऊंगी। आज धूप में बैठे हम दोनों साथ-साथ भोजन करेंगे।"

चिरन्तन वैसे ही पन्ने पलटता रहा।

कभी-कभार एक दिन मुझे भी तो दीजिए! केवल इसी दिन की इन्तजारी में अपना सारा सप्ताह किस तरह से गुजारती हूँ आपको क्या पता!

चिरन्तन की ओर से उत्तर इस बार न आया तो समझौता करती वितस्ता बोली— अच्छा तो शाम को जल्दी आइएगा हां!

शाम को! चिरन्तन ने गरदन उठा कर ऊपर देखा और ऐसे कहा जैसे पहली ही बार सुन रहा हो— शाम को भी समय कहाँ मिलेगा! ओवल कमेटी की मीटिंग कभी कभी तो रात के आठ-नौ बजे तक चलती रहती है। फिर!

इस फिर का वितस्ता के पास कौन-सा समाधान हो सकता था। अतः वह चुप हो गयी और चिरन्तन भी समय पर गाड़ी लेकर आफिस चला गया।

वितस्ता को यह बेबसी से लगा अकेलापन बहुत अखरने लगा। वह अकेली ही अपने आप में जूझती झगड़ती रही। कभी उसका मन रोने को होता। कभी अपने बालों को नोचने को। लेकिन फिर एक आशा की सुनहरी लहर-सी दौड़ती और वह चुप हो जाती। उसे इस पर ही कुछ कम सन्तोष न था कि चार इतने दिनों में चिरन्तन में कुछ तो परिवर्तन आ ही गए हैं। धीरे धीरे एक दिन पूरा ही बदल जाय तो क्या आश्चर्य! जुबान का एक बार भी उसने नाम लिया न था और न कभी हल्की बातें ही कही थी और न कभी सोने में ही अकारण कन्त विलम्ब किया था।

पर वह बैठी-बैठी क्या कर ! हर तरह से खीझ कर अब वह पीठ के बल बिस्तरे पर लेटकर छत पर लटके रंगीन लाल वल्ब की ओर देख रही थी। आज सितार बजाने को मन न था। न फूलों को सजाने को और न पुस्तकों को पढ़ने या घर के किसी और काम-काज में ही।

तभी कमरे के किवाड़ खटके। वह चौंक कर उठे इससे पहले ही बिन्दो हथेली में भरी प्लेट थामे खड़ी हो गई— कहिए श्रीमती वितस्ता देवीजी एम० ए० अर्थशास्त्र आप किस कल्पना नगरी में विचरण कर रही हैं ? बिन्दो ने सदा की तरह शरारत से अजीब-सा मुंह बनाया।

बिन्दो उसकी बचपन की सहेली है। यहीं पास ही सी स्क्वायर में, पीली-कोठी की मालकिन है। मालिक देश विदेश में इम्पोर्ट एक्सपोर्ट का धंधा करते हैं और यह घर पर अकेली रहती है। खूब पैसे और खूब बाल-बच्चों वाली है। किसी किस्म का कष्ट नहीं। बचपन से ही खुशमिजाज है। मिलनसार है। इसलिए जब भी समय मिलता है कोई न कोई काम का बहाना बनाकर स्वतः ही चली आती है।

वितस्ता सहसा बिस्तर पर ही उठ बैठी। सामने बिखरे बालों को परे हटाती हुई बोली— अरी बैठो न ! यह क्या ले आयी ?

अचार तुम्हारे लिए।

क्यों ?

अरी भोली !' हाथ नचाते हुए बिन्दो बिलकुल पास ही सटकर बैठ गयी— हमसे छिपाती हो रानी ! अब तो अचार खाने को मन करने लगा होगा न !

अचार खाने को ! क्या ?

'च्च ! मेम साहिबा य बनाने वाली बातें किसी और से करना। हम सब जानते हैं। वह हंस पड़ी।

अरी क्या जानती हो ? वाइनगॉड मैं समझी नहीं !

सच बिन्नी तू तो एकदम निरी निरी ही है री ! उसके मुह पर मीठ अचार की एक फांक ले जाती हुई बोली— सच तू कभी इतनी सुन्दर लगती है कि बस चूमने को जी चाहता है। सच्ची तू पुरुष होती तो मैं तुझ से ही शादी करती !

दोनों खिलखिला कर हंस पड़ी।

थोड़ा अचार बाहर से मंगाया था। कुछ पल बाद संयत होकर बिन्दी ने कहा— सोचा तुम्हारा शेयर तुम्हें दे आऊं। सुन जब जरूरत पड़े निस्संकोच कहना। तुम्हारे लिए तो मैं अचार का कारखाना तक खुलवा दूंगी।

बिन्दो मुस्कराती हुई उठ खड़ी होती है— अरी सुन तो ! देख, आज मर्दई से मालूम हुआ कि साहब आफिस गये हैं। हम भी अकेले हैं। यही सोच कर सिनेमा के दो टिकट मंगा लिये। ये देखो ! उसने अपने ब्लाउज में से मुड़ तुड़े दो टिकट निकाले और सामने की ओर बढ़ा दिये।

वितस्ता असमंजस में सोचती रही—'उनसे पूछे बिना !

क्या ! तो क्या गजब हो जाएगा जालिम ! तुम्हारे साहब सात आठ से पहले लौटने के नहीं और हम छह से पहले ही घर पर हाजिर ! फिर ! !' बांह पकड़ कर बिन्नो ने उसे पलंग पर से उठाया— जब देखो तब पलंग पर ! अरी पलंग क्या इतनी अच्छी लगती कि ! ब्याह तो सभी के होते हैं पर दुनियां का भी तो कुछ लिहाज कर !'

उसे मुंह भींचकर हंसती देख वितस्ता भी अपनी हंसी रोक न पायी।

वास्तव में वितस्ता का कहीं भी जाने को मन न था। लेकिन वह जोंक की तरह ऐसी चिपट गयी कि

आने जाने पिक्चर शुरू हो चुकी थी। हाल में अंधियारा छा गया

था। सामने के सफेद पर्दे पर डाक्युमेण्ट्री बड़ी तेजी से फिसल रही थी।

थोड़ी देर बाद फिर असली पिक्चर प्रारम्भ हुई। वितस्ता ने देखा आज छुट्टी का दिन होने के कारण हाल सचाखच भरा हुआ है। लोग छुट्टी के मूड में हैं। कितने ही दम्पति साथ साथ बठे सिनेमा का पूरा पूरा आनन्द ले रहे हैं। बाहों में बाहें डाले—बीच बीच में फुसफुसा रहे हैं। अनायास खिलखिला रहे हैं। और एक हैं—उसके पति जो छुट्टी के दिन भी आफिस जाते हैं। जोनल कमेटी की मीटिंगें जिन्हें आये दिन खाये जाती हैं। उस आफिस के अलावा जीवन में उनके लिए और कुछ है ही नहीं! सामने तीसरी कतार पर बठे एक दम्पति पर उसकी निगाह ठहर गयी। अभी अभी अधेरा होते ही जिन्होंने बड़ी अदा से एक दूसरे को किस कर लिया था।

वितस्ता के सारे शरीर में सुरसुरी-सी फल गयी। पिक्चर कहाँ से शुरू हुई कहाँ तक पहुच गयी—उसे फिर कुछ पता न चला। लेकिन इण्टरवल में ज्यों ही सहसा प्रकाश फला उसकी मुंदी पलकें खुलीं जसे वह नींद में जागी। अचकचाकर उसने विन्दो की ओर देखा और फिर सामने तीसरी कतार में बठे दम्पति की पीठ पर पलकें गड़ गयीं और खुली-की-खुली रह गयी।

चिरन्तन बगल की सीट की पिछली पाटी पर दूर तक अपनी बाहें फैलाये बठा था। बांहों की सीमा रखा पास बठी जुबेदा के दाहिने किनारे के कन्धों तक को घर थी। चिरन्तन मुस्करा रहा था। जुबेदा भी बालों में पीले फूल खोंसे मुस्कराकर चिरन्तन को आंखों ही आंखों में पीकर मौका की चुस्किया ले रही थी।

वितस्ता के पांवों तले धरती खिसक गयी। सारी की सारी छत टूटकर उसके सिर पर गिर पड़ी। वह सिर-दद का बहाना बना कर सीट से उठी और सीधे घर की ओर निकल चली।

शाम को चिरन्तन काफी देर से लौटा। वितस्ता आज रोज की

वितस्ता ने आंसुओं से भीगा मुखड़ा ऊपर उठाया—लेकिन देखिए मैं ऐसा न करूंगी। अपने पावों के पास थोड़ी-सी ठौर दे दीजिए। वहीं पर पड़ी रहकर जिन्दगी गुजार दूंगी। कभी उफ तक न करूंगी! वितस्ता जोर से फूट पड़ी।

चिरन्तन ने उसे बाहों में समेट कर उठाया। उसका आंसुओं से भीगा मुखड़ा होंठों से छुआ और अपनी हथेलियों में छिपा लिया।



नई बात



जब कहीं ब्याह की बात न चली, दरजा दस तक पढ़ाने लिखाने के बाद भी सार्थकता सिद्ध न हुई और बियाह होकर घर बिठलाना पड़ा—और घर बाहर भी बदनामी होने लगी तो चन्न बल्लभ उप्रेती ने अपनी बहन धना को पहाड़ से दिल्ली भजन को लिख दिया।

गरमियों के दिन थे—तपते। भरी दुपहरी। लू के थपेड़ों के बीच, इक्का-दुक्का साइकिल सवार हाँफता हुआ विनय-नगर 'मेन मारकीट' की ओर गुजरता दीखता।—और आसमान में कोई चील मँडराती कौवे कांव-कांव कर गन्दी नालियों में सूखी चोंच डुबोते तो—एक—गरमी में लिपटी धुँधली उदासी चारों ओर बिखर जाती।

चन्न बल्लभ धनुष का डोर की तरह, गले में जनेऊ डाले मात्र अण्डर-वीयर पहने, अपनी आम जैसी सूखी ढीली बांस की खटिया पर गिरा—कमेटी का हिसाब जोड़ रहा था (हर महीने पाँच-पाँच रुपए जमा कर परस्पर ब्याज पर लगा कर, कुछ अपने को कुछ समझने वाले चपरासियों तथा धर्माभाव में बिलबिलाने पर भी अपनी पोंठ निमोरने वाले—

वितस्ता ने आंसुओं से भीगा मुखड़ा ऊपर उठाया— लेकिन देखिए मैं ऐसा न करूंगी। अपने पांवों के पास थोड़ी-सी ठौर दे दीजिए। यहीं पर पड़ी रहकर जिंदगी गुजार दूंगी। कभी उफ तक न करूंगी!' वितस्ता जोर से फूट पड़ी।

चिरन्तन ने उसे बांहों में समेट कर उठाया। उसका आंसुओं से भीगा मुखड़ा होंठों से छुआ और अपनी हथेलियों में छिपा लिया।



नई बात

जब कहीं ब्याह की बात न चली, दरजा दस तक पढ़ाने लिखाने के बाद भी सफलता सिद्ध न हुई और विवश होकर घर बिठाना पड़ा—और घर बैठे-बैठे भी बदनामी होने लगी तो चन्द्रा वल्लभ उपरेती ने अपनी बहन बसंती को पहाड़ से दिल्ली भेजने को लिख दिया।

गरमियों के दिन थे—तपत। भरी दुपहरी। लू के थपेड़ों के बीच, इक्का-दुक्का साइकिल सवार हांफता हुआ विनय-नगर या मारकीट की ओर गुजरता दीखता।—और आसमान में कोई चील मंडराती, कौवे कांव-कांव कर गन्दी नालियों में सूखी चोंच डुबोते तो—एक—गरमी में लिपटी धुंधली उदासी चारों ओर बिखर जाती।

चन्द्र वल्लभ धनुष की डोर की तरह गले में जनेऊ डाले मात्र अण्डर-वीयर पहने अपनी खाल जैसी सूखी ढीली बांस की खटिया पर गिरा—रुपयों का हिसाब जोड़ रहा था (हर महीने पांच-पांच रुपए जमा कर परस्पर ब्याज पर लगा कर कुछ अपने को 'कुछ समझने वाले चपरासियों तथा अर्थाभाव में बिलबिलाने पर भी अपनी पीठ निपोरने वाले—

सजातीय बन्धुओं ने सहृ-मुष्टि के लिए इस व्यवस्था का नाम कमेटी रखा था)

इस अगले महीने की पहली को सेवा-नगर डीलविष्ट के क्वाटर में 'कमेटी' थी।—भद्रा वल्लभ गुरू कहलाने तथा गत माह से दफ्तरी से तरक्की होकर जूनियर-क्लर्क होने की वजह से सिक्रेटरी था।—उसे अपना हिसाब हयातसींग को नियत समय पर सौंपना था। ताकि मीटिंग ठीक चल सके। किन्तु सवा-तेरह आने का जोड़ मिलता न था। इसलिए बार बार वह अपने छोटे से कपाल पर पेंसिल का फुन्दा ठोक रहा था।

चार मरियल बच्चों की मां उसकी धरम पत्नी—गोविन्दी। जिसके गोरे गालों पर 'छोए' पड़ गए थे जिसकी गोदी पर लिपटा पसाने से नहाया नंगा बच्चा दूध भिंभोड़ रहा था—ऊंघ रही थी।

तभी बाहर गली पर हांक की सी आवाज आई।

अचकचाते हुए उसने सुना—कोई भद्रा वल्लभ पुकार रहा है।

जाफरी के छेदों से झांका एक तांगा रपटा रपटा मोड़ पर मुड़ता हुआ दिखाई दिया—

देखते ही आंखें फल-सी बाहर उबरीं।— [illegible] थ [illegible]मारी बेटि जली!—देखो तो हो! मछली की तरह आंखें पति पर से फिसल कर नीचे की ओर डूब गई—

भद्रा वल्लभ हाथ का कागज हाथ में थामे मुनीमों की तरह पेन्सिल कान में खोंस कर हड़बड़ाता हुआ खड़ा हुआ। अजीब सा [illegible] से काठ की स्लेटी रंग की जाफरी के वर्गाकार छेदों के बीच—दोनों हाथों की अंगुलियों का गोल घेरा बनाए इस तरह देखने लगा, जैसे छोटे बच्चे दो-दो पैसे में बाइस्कोप के बक्स के भीतर झांकते हैं।

तांगे की अगली सीट पर तांगे वाले की बगल में धोती में ग्टूर की तरह बंधी घटी है। पिछली सीट पर टुन बाबा पावा था। सीट पर धमट, सहमे-से पालथी मारे बैठे हैं।

तांगे वाला केतकी का हाथ पकड़ कर बड़े जतन से उतार रहा है।—कहीं गिर न पड़े! बेटी कहकर उसकी पीठ पर हाथ फेर रहा है।

चन्द्र वल्लभ को यह अच्छा न लगा।

तेजी से वह नीचे उतरा। हिकारत की नजर से तांगेवाले की ओर देखा। पगे चबा कर मुंह काला किया।

चन्द्रा बल्लभ ने फिर कका को प्रणाम किया।—चरण छूकर। फिर कुतुब मीनार की तरह खड़ी केतकी को देखा—जो अब पहले की तरह बच्ची नहीं भरी-पूरी औरत सी लगती थी। उसने पांव छुए तो उसे अजीब-सा लगा।

दोनों मोटे मोटे हाथों में मोटी मोटी लाल चूड़ियां। विशाल मांसल शरीर में छोटी सी धोती—टखनों के ऊपर तक उठी।—बड़े भद्दे ढंग से पहनी—शहरों में ऐसे थोड़े ही पहनते हैं।

चारपाई पर पसरते हुए कका ने अपनी मैली-कुचैली फर की गरम टोपी बड़े गौरव एवं आत्म विश्वास के साथ उतारी और अपने ऊपर उठे घुटने पर रखी—

कितनी स्यारण है यार चन्द्र! तुम लोगों के पिछले जनम के करम हैं। हमने तो गड्ढे के खड्डे में पड़ पड़ उमर बिता दी। तेरे परसाद आज यह दिन भी देख लिया है।

चन्द्र वल्लभ ने अपना अनुभव कहा।

आप थक रहे होंगे कका!

न हो। मुझे तो मुरादाबाद से किसी के बस के ऊपर बैठने को ठौर मिल गई थी। पर हमारी कति परेशान न्हो। गाड़ी में कभी चढ़ी नहीं थी—मांच लगता सिर घूमता था।—उस पर भीड़ के रेल-पेल में दबी रही। आदमी पर आदमी था। यहां उतरते समय कहती थी—'दाज्यू दुख रहे हैं कका!' मिलटरीवालों से डब्बा खचाखच भरा था।

कका ने अपने दोना पांव दूर तक सनकाए। दसों अंगुलियां एक दूसरे पर कंघी की तरह फंसा कर सिर के नीचे पट्टी की तरह तान कर रख दी—

अपने गंगाराम की लड़की का कुछ पता चला हो! सुना दिल्ली में थी?

कमसुआ ड्राईवर कहते थे ।"

कका ने घर की तरफ की बहुत सी बातें बताईं। यह भी कहा कि मिलटरीवालों ने रानीखेत के पास एक औरत के साथ जम्पली की। औरत बच्चे पर थी—मर गई। सरपंच हम लोगों के घड़े से बाहर है। एक दिन कुल्हाड़ी उठाकर हमें मारने को आया था।

बड़ा बल्लभ माथा हिलाता रहा चुप। केतकी खिलखिलाती हंसती अपने छोटे भाई सदिया को इतने जोर से चूम रही थी कि उसे बीच में टोकना पड़ा।

शाम को भोजन के लिए ठंग कका जब कपड़े उतार धोती पहन कर चौक पर विराजे तो उन्होंने पहाड़-पुराण की बातों का टेली प्रिंटर फिर खोल दिया—

गांव-गांव में मोटर सड़क बन गई है हो। बलौक वाले भर गए हैं। हमने भी अपने घर के दो कमरे किराए पर लगाए हैं—चौदह रुपए पर। तीन बलौक के बाबू रहते हैं। कभी-कभी घर में ही खा लेते और रात को समय मिलने पर हमारी केति को भी पढ़ा दिया करते थे। —वे बिचारे न होते तो कसि दस साल में भी दर्जा दस पास न कर पाती। अपने हाथ से कलम पकड़ पकड़ कर लिखना सिखाते। अपने पैसे से किताब-कलम खरीद कर लाते। उस अलमोड़िया बाबू ने तो बड़ी मेहनत की। केति जाने और वह जाने अब देखो पढ़ाने में। हमारे इधर आती बेर कहता था केति को दिल्ली में ले जाओ हो बचा, यहीं परायवेट पास करवा कर बलौक की नौकरी में लगा देंगे।

खूब तरक्की करेगी। सुख रहेगी। जसी हमारी बहिन है वसी यह भी है ।

'हमने सोचा केति दिल्ली जाएगी तो हमारी आनन्दी का भी सुधर जाएगा। वह भी पढ लेगी।—बिना पढ़े अब शहरों की तरह गांव घरा मे भी वर मिलना मुश्किल है। जमाना ही बदल गया हो चन्द्रा!

आनन्दी चन्द्रा बल्लभ के ठल कका परमानन्द की बड़ी बेटी है। ठुल कका को उसके भविष्य की भी चिन्ता है।

'हमारी आनन्दी भी अब सयानी हुगी । रोटियां बेलती गोविन्दी ने घूघट के ओट से कहा।

द न पूछो ऽ! इस पाव गते पूस को उसे सत्रह पूरे हुए हैं। लेकिन लगती ज्वान-जमान है। हमारी केति से इक्कीस होगी, उन्नीस नहीं ।

पढ़ती है न!

फराफर पढती है। पटवारी-पेशकार आते हैं तो उनके सामने बैठती है। बातें करती है।' कका मासलेट से चुपडे फुलके एक के बाद एक निगलते रहे।

चन्द्रा बल्लभ अपनी ओर के अधिक नही किफायत से बोलता है। वह भी आज धोती लपेट कर चौके पर बठा है।—नही तो ठुल कका घर जाकर धरम-डूबने की बात कह कर बदनामी करेंगे।

हाइ इसकूल खुलने से गाव में बड़ी तरक्की हो रही है।—असो घर घर से लौटने पर सुना रहा था । चन्द्रा बल्लभ ने कुछ कहने के लिए कहा।

'तरक्की-तरक्की तो क्या होती! यार, शहरो की तरह गावा मे भी 'लोफर' भर गए हैं। गुण्डा-गर्दी मच रही है। ग्राम-देवियों के तो किस्से ही और हैं ! कका ने सेर भर का लोटा सिर से दूर ऊपर तक उठाया। झरने की सी लम्बी धार गटा-गट गले में गेरते रहे। एक ही सांस में लोटा रीता कर दिया। फिर भीगी मूछो को पोछते हुए निवाले तोडने लगे।—

तेरी चिट्ठी जब पिछले दिन आई तो हमने गांव में भेली बांटी। सब कहने थे—औलाद हो तो ऐसी हो। सेरा-वालो का लड़का होनहार निकला। दफ्तरी से क्लिक हो गया। पटवारी के बराबर तनखा पाता है। कुर्सी पर बैठकर कलम चलाता है ।

अपने होनहार होने की बात सुनकर चन्ना अन्नभ मन ही मन बहुत मगन हुआ। उसकी पत्नी का चेहरा भी एकाएक खिल उठा। भले ही आफिस म अभी तक भी वह पहले की तरह बिम्पिया ही चिपका रहा था।—किन्तु लोगा के बीच एक आदर का स्थान तो बन ही चुका था।

वह सचमुच मोम बन गया अब। सुधाम के लहजे मे बोला—कका आपन तो कुछ खाया नहीं ! आहार कम हो गया क्या ?

आहार वाहार तो ठीक ही है चन्ना। कका ने परम विराग स कहा— पर अब शरीर म सुस्ताई जैसी आ गई है हो। कसी कुदाली चलाई नहा जाती। जजमानी स जमता क्या है ! नोन-तेल का भी पूरा नही पड़ता। इन कन्याओ के ऋण मे उऋण हो जाता तो जगन्नाथ जी का पुन्न मिल जाता ।

ठुन कका न पाषाण शिला सी बठी केतकी की ओर देखा। जिस अभी तक भी देख के अचरज लग रह थ। जो अभी तक भी सारी वस्तुआ को अचरज स देख रही थी।

केति, कैसी लगी दिल्ली ? कका ने खाने के बाद हाथ पोछकर सींक से दांता को कुरेदते हुए पूछा।

केतकी बत्तीसी दिखला कर फी इ इ कर विहंस दी।

नींद न आई चन्ना वल्लभ को। 'कमटी का हिसाब छ मत्तर हो गया था। अब समस्या थी—केतकी की। उसने उमंग म आकर दिल्ली आने की निरत ता लिया था पर यहां आकर कौन-सी समस्याए उठ खड़ी होंगी—सोचा न था।

चपरासियों के क्लास फोर क्वाटर म एक जाफरीवाला कमरा लेकर

पिछले सवा साल से गुजारा कर रहा था। दूसरे में कोई रोहतक की तरफ का छड़ा था—अकेला। अब एक ही कमरे में सात आदमी कैसे रहेंगे! छड़े के साथ कैसे निभेगी! कहीं कुछ बात हो गई तो—जमाना बिगड़ चुका है! किसी का भी ईमान नहीं!

सुबह नहा धोकर ठुल ककका ध्यान में बैठे। चन्द्रा वल्लभ राशन व दूधिए का हिसाब जोड़ता रहा। आने वाले महीने में गुजारा मुश्किल था।—उस पर ठुल कका के आने-जाने का खर्चा—सो अलग!

वह सोचता था कमेटी से कुछ पैसे निकाल लेगा। परन्तु सत्तर का पिछला बकाया गत तीन महीने से उतर न पाया था।

हहो चन्द्रा वल्लभ! पूजा के आसन से उठने के बाद ठुल कका को जैसे कुछ सहसा याद आ पड़ा— यहां सुना है पुतलीघर है! तेरी काकी के घाघरे के लिए दस-बारह गज किरप तो मिल ही जाएगी न!

चन्द्रा वल्लभ ने सिर हिलाया—केवल।

चाय का हाथ भर लम्बा गिलास कका ने होठों पर लगाया— यार, कुछ कपड़ा धरड़ मिलवा लेना हो—हमारी बर्ति के लिए।—देसी फसल के। वहां समय ही नहीं मिला। फिर गाय-बराम में मिलता भी तो महंगा है! दुकानदारों ने 'लूटमौल' मचा रखी है। जितना मुंह में आया उतना दाम वह देते हैं।

कका ने चाय के साथ बाड़ी भी सुलगा ली— पहाड़ में जुलम अकाल पड़ा है हो चन्द्रा! एक समय खाने को भी राशन नहीं मिलता। लोगों को लाज रखना कठिन हो गया है। चीनी की बात तो दूर रही लोगों को बीमार के लिए बांस मिसरी तक मुहय्या नहीं है। तू सब कुछ घर वाला भी मस्त कर हो!

चन्द्रा वल्लभ पाठशाला के विद्यार्थी की तरह हर बात पर सिर हिलाता है।

शाम को स दरिल पसिन्ता कमेटी की मीटिंग के बाद पर

मोटा—थर्ड हारा थका हुआ। अभी छोटे लच्छू को लिए मारकेट' गए हैं। अभी तक लौटे नहीं। मेतकी बाहर चारपाई पर मगरमच्छ की तरह लेटी है।

इनके लच्छन भले नहीं हो ऽ! गोविन्दी ने पति के कानों पर फुसफुसाते हुए कहा।

क्यों? साश्चर्य चन्द्र वल्लभ ने देखा।

'इनकी बक्सी में चिट्ठिया ही चिट्ठियां भरी पड़ी हैं। पता नहीं किस किस की!—बेशरम बाप लिखी है।

चन्द्रा वल्लभ ने कुछ कहा नहीं। किंचित आगे सरक आया—

किस की हैं?

क्या पता? मुँह-जले बसीक वालों की होगी। इस्कूल के मास्टरों की होगी। बनिए की गुल्लक की तरह बक्सी भरी पड़ी है।

जमीन धसने लगती है—उसके पावों से।

सुनो तो ऽ! वह और पास आई— कैसा बेशरम जमाना हो गया है! किसी से कहना नहीं—!

एक अजीब-सी स्थिति हो गई चन्द्रा वल्लभ की। यह सब जानने सुनने को वह तयार न था। एकदम गूंगे की तरह सांस रोके चुप रहा। पत्नी को इस मामले में बढ़ावा देना उसे ठीक न लगा।

वहीं किसी के पल्ले बांध देवे—गुपचुप। यहां बदनामी हो गई तो फिर कहां जाएंगे! डूब मरने को भी ठौर न रहेगी!—परदेस का मामला ठहरा! फिर उस भाव से सयानेपन के साथ कहकर गोविन्दी चुप हो गई।

देर तक सन्नाटा रहा। कुछ टटोलते-खोजते हुए चन्द्रा वल्लभ ने पत्नी की ओर देखा— तू तो दिन भर यहीं रहती है!—अपनी निगाह पर रख।—बदनामी कैसे होगी!

क्या? पत्नी की पलकें फन गईं— दिन भर मैं भेड़ों की तरह इन्हीं की रखवाली करूं! सारा दिन खिड़की पर बैठी, बाहर भीतर

आती-जाती ताक झाँक करती रहती हैं।—यह मुसण्ड ! (उसने दीवार की ओर इंगित किया। उसका तात्पर्य छठे पड़ोसी से था)—आज दोपहर को ही छुट्टी लेकर घर आ गया था। तब से यह जाने या यह ! दरवाजे पर खूँटे की तरह गड़ गई हैं। मैं किसी काम से बाहर जाती हूँ तो वह लपक कर कागज की गोली फेंकता है और यह खिल्ल से हँस देती है।'

अपने निलज्ज पड़ोसी पर चन्द्रा वल्लभ को बेहद गुस्सा आया। पर शान्त भाव से पानी की तरह पी गया। अंगीठी के कोयले से बीड़ी सुलगाता—वैसा ही रोज की तरह अण्डर-वीयर पहने बैठा रहा।

चन्द्रा वल्लभ को आता केतकी ने देखा था पर वह वैसी ही पड़ी रही। लेकिन देर तक भैया भाभी को गुप-चुप बातें करते सुन उसे न जाने क्या प्रतिक्रिया हुई। बाल बिखेरे आँचल बहाए, बरगद के पेड़ की तरह वह आँखें मलती खड़ी हो गई।

दोनों अब चुप थे।

दद्दा कल अपने ऑफिस से आठ-दस लिफाफे ला दोगे न !'

'क्या ?

"हमारे पड़ोस में जो वे भारत नन्दन क्लर्क-बाबू रहते हैं न उनकी दुलहिन को चिट्ठी लिखनी है। दिल्ली आती बेर कहती थी—लली, वहाँ पहुँचने पर कम से कम चिट्ठी भेज कर ही याद कर लेना। भारत नन्दन बाबू कहते थे—जाड़ों में छुट्टियों में दिल्ली आऊँगा तो तुम्हारे ही घर पर रहूँगा। भारत नन्दन बाबू बहुत अच्छे हैं। हम सबको बड़-चौपू कहकर पुकारते हैं।

रेल के इंजिन की तरह चन्द्रा वल्लभ भक भक बीड़ी फाँकता रहा।

केतकी के ब्लाउज में एक छोटा-सा पेन लगा था। चन्द्रा वल्लभ ने यों ही पूछा— यह कहाँ से आया ?'

मेरा है ! खिस खिस हँसती केतकी बोली— 'गुमाद राम मास्टर जी ने इनाम में दिया है। कहते थे—इससे जो भी लिखता है, पास हो जाता है। मैंने भी इसी से लिखा था। तभी तो पास हुई !

ठुल कका पूरे छः दिन रुके—आज जाता हूं कल जाता हूं करके। अपने लिए वास्कट का कपड़ा छतरी और चादर की काकी के लिए बारह गज छींट का कपड़ा ले जाना भी न भूले। पूरा फेरी-वालों का सा गट्ठर बना कर चलने की तैयारी करने लगे—

'हां हो चन्द्र यहां अलमोड़ा के हमारे तिवाड़ी वकील साहब के लड़के भी रहते हैं। सुना अफसर हैं। उनकी सोहबत में रहा कर यार।'

फिर कुछ रुक कर सोचते हुए बोले—'गांव में जर ने जुलम मचा रखा है हो। लोग कहते हैं तेरी दिल्ली में बड़ी पहुंच है। हो सके तो उसका भी कुछ बन्दोबस्त करवा देना हो।'

चन्द्र वल्लभ बन्दोबस्त करवाएगा या बन्दोबस्त नहीं करवाएगा—कुछ नहीं कहता।

ठुल कका को कुतुब-मीनार बिरला-मन्दिर सबके दर्शन करा के चन्द्र वल्लभ बस स्टेशन तक छोड़ने जाता है। जाते जाते भी कका कर्तव्य का बोध कराते रहते हैं—

'नाति दुरुली और आनन्दी का भार तेरे ऊपर है। उनके लिए वर भी तलाश करते रहना। खर्च-खरचा भेजना हो। अपनी काकी के लिए नागा की एक बातस और मेरे लिए जाड़ों में पहनने के लिए एक काला ऊनी वास्कट...।'

जब तक रोडवेज हरी न हुई सीटी न बजी घुर्र-घुर्र पहिए न घूमने लगे कका प्रवचन देते रहे—'चन्द्र वल्लभ हो मेरे तो बलि था कुछ और पैसे भिजवा देना। उसका जनम सुधर जाएगा। तुम्हारे पड़ोस का लड़का बड़ा होनहार है—बी० एस सी पास किया।—कहता था कतकी को मैं पढ़ा दूंगा। मैं पधान की बात पक्की कर आया हूं।'

चन्द्र वल्लभ घर लौटने लगा तो उसके पांव कांपने लगे—न जाने उसके कानों में फुसफुसाकर मालिनी आज कौन-सी नई बात कहेगी! ●

दृशित

•

भले ही लोग कहते रहें कि दद्दा मरे नहीं लड़ाई म मारे गये— शहीद हो गये। पर बाबूजी का घायल मन, किसी दूसरी ही दुनिया म पर-कटे पछी की तरह छटपटाता रहता है।

इन्दर आज क्या वार है बेटा ? घर म अम्मा-बाबू जी मुझे इसी नाम से पुकारते हैं।

'मगल है शायद।'

'तुम्हारे दद्दा को गुजरे कित्ते महीने हुए ?"

मैं उगलियों मे हिसाब लगाता हू। कुछ जोडता हू। कुछ घटाता हूं 'बरस पूरा होने में अभी दो-ढाई महीने हैं शायद !

'ह दो ढा ई ! बाबू जी के सूखे होंठ लुनत हैं। वे इस तरह देखते हैं कि मैं कहीं गलत तो नहीं कह रहा।

तभी पराग अखबार मोचता है।

इसस जहाज बना दो न भैया जी ! हम इसम बैठ कर पापा के पास बोमडीला जायेंगे।

मैं कुछ भी उत्तर नहीं देता तो वह बछिया की जसी बड़ी-बड़ी निरीह आंखों स मेरे उन्मन चेहरे की ओर ताकता है।

आप भी सरन जायेंगे न अमल जी! सिर हिलाकर पूछता है।

हां। मैं यो ही कह देता हू।

वह कमीज की आस्तीन से नाक पोंछता है। फिर आखें मिचमिचाता है आपको तो गुस्सा नही आता! फिर कसे लरेंगे? ह अमल जी!

मैं मक्खन के गोले को अपनी दोनों हथेलियों के बीच भरता हूं। पास खीचता हू। उसकी छोटी-सी पतली नाक में दो हल्के-से छोटे छेद ऐसे लगते हैं जसे दियासलाई की बारीक नोक से अभी-अभी चुभोकर बनाए हों।

मैं उसे जूठा करूं इससे पहले ही वह उछलता है। चला जाता है। पर मैं उसी परिधि पर फिर फिर घूमने लगता हू।

हां पराग ठीक कहता है। मैं लड़ाई में नहीं जा सकता। मुझे अब गुस्सा नहीं आता। कभी-कभी मैं स्वय भी सोचता हू मुझे गुस्सा क्यों नहीं आता है!

नदी के किनारे बिखरे पत्थरों की तरह मुझे असंख्य सपाट आकृतियां दिखलाई देती हैं। पर एक भी ऐसी नही जिससे अकारण लड़ सकूं। झगड़ सकूं। मन की सारी बातें जिस पर उड़ेल सकूं।

मेरी रीती आखें तब प्रकाश विहीन सर्च-लाइट के हण्डे की तरह निरपथ चारों ओर घूमती हैं। फिर अपमुने दरवाजे पर ठिठक पड़ती हैं।

एक गूंगी-सी गहरी परछाईं दूर कहीं से उड़कर ठहर जाती है। सीपी जसी चौड़ी पलकें खोले मेरी ओर देखती है।

नीरेन दा!' बच्चों की भांति वह पूछने लगती है उमर में इतनी बड़ी होकर भी, 'आप इस अंधेरे कमरे में अकेले क्यो बैठे रहते हैं?

मैं कुछ कह नहीं पाता।

"घूमने से तन्दुरस्ती अच्छी रहती है न!'

मुझे ख्याल आता है—हाँ वह ठीक कह रही है। मैंने भी हाई स्कूल में फौसं की किताब में पढ़ा था शायद—घूमने से तन्दुरुस्ती अच्छी रहा करती है।

"आप कहते थे न!" वह अजीब-सा मुंह बनाकर दुपट्टे का छोर छल्ले की तरह अंगुलियों में लपेटती है आप कहते थे न अगले जाड़ों में स्कूटर खरीदेंगे। एक भूरा-सा सूट सिलवायेंगे। एक छोटा-सा सुन्दर घर बनायेंगे। जिसमें नीले-नीले परदे होंगे। एक नया नीला सोफा सेट होगा। परदों की तरह जिसकी गद्दियों का रंग भी एकदम गहरा नीला होगा। एक खूबसूरत खूब गानेवाला रेडियो और" और ।

"और कुछ नहीं।"

वह विस्मय से देखती है 'और कुछ भी नहीं?

'हाँ।

उसके माथे पर रेशम की लकीरों की तरह हल्की हल्की सिलवटें पड़ जाती हैं। बड़े गुस्से से वह घूर कर देखती है 'झूठे कहीं के! विद्या कसम कहो! नहीं कहते थे !

"क्या नहीं कहता था?

'क्या नहीं कहता था! वह मुंह बिचकाती है तुम झूठे हो! नहीं कहते थे कि एक बड़ा-सा पिंजड़ा होगा। उसमें एक मुनिया होगी। एक गौरैया होगी। एक छोटी-सी खूब बोलने वाली चीखने वाली, मौ काली-काली मखमली मैना होगी। और एक मेरे बराबर बड़ी गुड़िया—जिसकी मेरी जैसी आखें मेरे जैसे दांत !

कहते-कहते एकाएक वह चहक उठती है। ताली पीटती हुई खिल पड़ती है नीरेन दा सच्ची आप बूढ़े हो गये। आपके सारे बालों पर सफेदी बिखर रही है। मैं सबसे कह दूंगी। वह ही-ही-ही हंसने लगती है।

मैं उसके सफा के घोंसल जैसे उलझे बालों को नोचता हूं "जंगली कहीं की! अभी तक पागल नहीं गई! इतनी बड़ी हो गई—दिल्ली के

मैं कुछ भी उत्तर नहीं देता तो वह बछिया की जैसी बड़ी-बड़ी निरीह आँखों से मेरे उदास चेहरे की ओर ताकता है।

आप भी लड़ने जायेंगे न अंकल जी ! सिर हिलाकर पूछता है।

हाँ। मैं यों ही कह देता हूँ।

वह कमीज की आस्तीन से नाक पोंछता है। फिर आँखें मिचमिचाता है आपको तो गुस्सा नहीं आता ! फिर कैसे लड़ेंगे ? ह अंकल जी !

मैं मक्खन के गोले को अपनी दोनों हथेलियों के बीच भरता हूँ। पास खींचता हूँ। उसकी छोटी-सी पतली नाक के दो हल्के-से छोटे छेद ऐसे लगते हैं जैसे दियासलाई की बारीक नोक से अभी-अभी चुभोकर बनाये हों।

मैं उसे जूठा करूँ इससे पहले ही वह उछलता है। चला जाता है। पर मैं उसी परिधि पर फिर फिर घूमने लगता हूँ।

हाँ पराग ठीक कहता है। मैं लड़ाई में नहीं जा सकता। मुझे अब गुस्सा नहीं आता। कभी-कभी मैं स्वयं भी सोचता हूँ मुझे गुस्सा क्यों नहीं आता है !

नदी के किनारे बिखरे पत्थरों की तरह मुझे असंख्य सपाट आकृतियाँ दिखाई देती हैं। पर एक भी ऐसी नहीं जिससे अकारण लड़ सकूँ। झगड़ सकूँ। मन की सारी बातें जिस पर उड़ेल सकूँ।

मेरी रीती आँखें तब प्रकाश विहीन सर्च-लाइट के हण्डे की तरह निरर्थक चारों ओर घूमती हैं। फिर अधमुँदे दरवाज़े पर ठिठक पड़ती हैं।

एक गूँगी-सी गहरी परछाईं दूर कहीं से उड़कर ठहर जाती है। सीपी जैसी चौड़ी पलकें खोले मेरी ओर देखती है।

नीरेन दा ! बच्चों की भाँति वह पूछने लगती है उमर में इतनी बड़ी हो कर भी 'आप इस अँधेरे कमरे में अकेले क्यों बैठे रहते हैं ?'

मैं कुछ कह नहीं पाता।

'घूमने से तन्दुरुस्ती अच्छी रहती है न !

मुझे ख्याल आता है—हां वह ठीक कह रही है। मैंने भी हाईजीन की कोर्स की किताब में पढ़ा था शायद—घूमने से तन्दुरुस्ती अच्छी रहा करती है।

"आप कहते थे न!" वह अजीब-सा मुंह बनाकर दुपट्टे का छोर छल्ले की तरह अंगुलियों में लपेटती है "आप कहते थे न अगले सालों में स्कूटर खरीदेंगे। एक भूरा-सा सूट सिलवायेंगे। एक छोटा-सा सुन्दर घर बनायेंगे। जिसमें नीले-नीले परदे होंगे। एक नया नीला सोफा सेट होगा। परों की तरह जिसकी गद्दियों का रंग भी एकदम गहरा नीला होगा। एक खूबसूरत खूब गानेवाला रेडियो और और।"

'और कुछ नहीं।'

वह विस्मय से देखती है 'और कुछ भी नहीं?'

'हां।'

उसके माथे पर रेशम की लकीरों की तरह हल्की-हल्की सिलवटें पड़ जाती हैं। तब गुस्से में वह घूर कर देखता है, "झूठ कहीं के! विद्या कसम कहो! नहीं कहते थे!"

क्या नहीं कहता था?

खम्भे से भी ऊंची ?

वह बालों को छुड़ाने के लिए छटपटाती है।

'बता, यहां क्यों आई थी ?' मैं उबल कर देखता हूं।

'बिज्जो से मिलने !' वह झटका देती है, 'कसाई कहीं के !' दूर चली जाती है।

निगाह जाड़ों की फीकी धूप की तरह फिर खिड़की पर बिखर पड़ती है—उदास। ईंटों से पटी छोटी-सी संकरी गली। आदमी ही आदमी !—चींटियों की कतार की तरह। इतने लोग इस मैली-सी दम घोटने वाली अंधी-गली से होकर कहां आते जाते होंगे ! मैं फिर बरगद के पेड़ की चोटी की ओर देखता हूं। छत की मुंडेर लेती है। जहां मनु सुबह नहा कर अपने गीले रेशम को कंधों पर बिखेर देती है। नाइलॉनी धुएं के उस पार धूप में ताकती पता नहीं क्या-क्या सोचती रहती है !

मुझे लगता है, मनु ठीक कहती है। सचमुच मेरे बालों पर रात बिखरती चली आ रही है। एक बार अम्मा ने देखा तो मुए इन बालों को नोच कर चुप हो गई थीं। पर बाबू जी जब कभी मेरे सफ़ेद बालों की ओर देखते हैं तो उनकी धुंधली-सी पुतलियों में एक अजब-सा रंग उभर आता है। सफ़ेद ब्लॉटिंग कागज़ की तरह, जिसमें कोई भी भाव पल भर ठहर नहीं पाता।

बाल असमय पक जाते हैं क्या पक जाते हैं ! आदमी समय से पहले ही बूढ़ा हो जाता है—क्यों हो जाता है ! थोड़े से समय में सदियों से सजाए सपने पता नहीं कहां चले जाते हैं ! अभी दुनिया ही मैंने कितनी देखी है ! अगर दद्दा होते तो क्या मैं भी अभी सबकी तरह यूनिवर्सिटी में नहीं पढ़ता ! धारों में दुहरे था। मैं तो दिन रात पिसता रहता ! दद्दा कहते थे—तुम्हें पढ़ने के लिए कॉलेज भेजेंगे ! मेरा दिल भर आता है। मैं झटके से मुंह मोड़ता हूं और फिर कुछ ठहर कर फिर उसी काम में जुट जाता हूं। पराग की पोथी, दद्दा की आत्मकथा क्यों

हरिद्वार जाने आने का खर्चा और बाबू जी की दवा का हिसाब लगाता हूं—कि इसा दरवाजे पर फिर वही परछाइ ठहर पडती है—बिज्जो स मिलने के बहान।

जी, यहां बिज्जो नहीं आई ?'

"ना।'

ना के साथ उसे चला आना चाहिए था लेकिन वह ठिठक पडती है।

नीरन दा आप बिलकुल बन्ल गय है सच्ची!' उसने जैसे मुझे बहुत वर्षों बाद दखा और बहुत गहरे में उतरते हुए कहा आप इतना सारा काम किसके लिए करते हैं! न समय पर खाते हैं न पीते हैं न सोते हैं। बिज्जो कहती थी नीरेन दा को नीन्द न आने की बीमारी हो गई है। सच, आपका चेहरा अजाब अजीब-सा हो गया है। दूर स दखने पर डर-सा लगता है ।

मैं अपने रूख होंठो को जीभ स भिगोता हू। घूर कर उसकी ओर दखता हू। वह सहम जाती है।

,धर आ ऽ !' सरोप कहता हू।

वह पास आकर खडी हो जाती है।

वा सामन कुर्सी खीच!

वह कुर्सी खीचती है।

बठ जा।

सिकुड कर बठ जाती है।

अ टा सच-सच बता! मुझ म्खकर डर लगता है ?

वह सहम सिर हिलाती है— ना

झूठ बोलती है! लगता है न!

नहा तो!'

फिर क्यों कहती थी ?

झूठ मूठ कहती थी।

झूठ-मूठ कहती थी! मुट्ठी भर तार तार सुनहरा सूखा रशम हवा

से उड़ कर फिर माथे पर फैल जाता है। मैं उसके मासूम-मुखड़े की ओर देखता हूं। बड़ी-बड़ी भूरी पारदर्शी आंखों की ओर।

'अच्छा बता, मुझे देख कर डर नहीं लगता तो क्या लगता है?'

वह बिना सोचे अनायास कहती है "अच्छा लगता है।"

मैं हंस पड़ता हूं। मुझे हंसता देख वह भी यों ही हंसने लगती है।

कुछ क्षण फिर सन्नाटा रहता है।

मैं सिगरेट के सिरे की राख की लम्बी लकीर की ओर देखता हूं। फिर बड़ी तल्खी के साथ कहता हूं 'देख बन्नू!

बन्नू सचमुच देखने लगती है।

बाबू जी बूढ़े हो गये न!

वह पराग की तरह सिर हिलाती है "हां!"

'तू देखती है अम्मा को इस उमर में भी कितना काम करना पड़ता है! जब से बिज्जो गई कोई भी हाथ बंटानेवाला नहीं रहा।

वह अपलक देखती रहती है।

भाभी खुद ही दुखी हैं। उस पर दिन रात बच्चे नोचते रहते हैं।"

हां। वह फिर माथा हिलाती है। जैसे यह बात भी वह जानती है।

और फिर दद्दा के गुजर जाने के बाद कमानेवाला अकेला मैं ही तो हूं न!"

'हां।

तो सुन! तू ही बता इतनी बड़ी गाड़ी अकेले कैसे खींची जायगी! तुम्हारे डैडी की तरह तो सब पैसे वाले नहीं होते न!'

बन्नू की बड़ी बड़ी निश्छल आंखों में रस का गूना-सागर सिमट आता है। बड़े-बड़े आंसू से टीस बनते हैं, बिगड़ जाते हैं।

तो मीरन दा! वह बहुत देर तक सोचती रहती है "तो आप शादी क्यों नहीं कर लेते!

'हूं! मैं विस्मय से कह उठता हूं "शादी कर लूं! क्यों?

"क्या क्या? वह सारा काम कर लिया करेगी न!

मैं कुछ भी कह नहीं पाता। आखें मींचे पता नहीं क्या क्या सोचता रहता हूं।

हां कहती हो ठीक हो! जो घर का सारा भार उठा ले मगर ऐसी औरत मिल पाती तो !'

मनु बात काटती है। आश्चर्य से कहती है क्या कहा, औरत से शादी करोगे नीरेन दा! लड़के लोग तो लड़कियों से ब्याह किया करते हैं! वह अपनी अबूझ हंसी में खिल खिल हंसने लगती है, सच्ची, मैं सबसे कह दूंगी !

वह कपास की तरह हल्की हो जाती है।

मुझसे कुछ भी कहते नहीं बनता। यह क्या है! किसी भी बात को गहराई से क्यों नहीं ले सकती! मुझे उस पर हंसी आती है। दुःख होता है। कितनी बड़ी हो गई! इसकी उमर की सारी लड़कियों की शादी हो गई है। पर यह अभी तक बच्चों जैसी उड़ी उड़ी बातें किया करती है कि

अपने सफेद बालों को पहले कुछ दिनों तक एक-एक कर नोच कर निकालता रहा। पर यह क्रम भी अब छूट गया। चेहरे की झाइयां गिनने से क्या! अपनी ही आकृति अब मुझे अपरिचित लगती है। भय-सा महसूस होता है।

पर यह क्या! मनु अब बहुत दूर-दूर क्यों रहती है! कभी भी दीखती नहीं। बिज्जो कहती है इन्दौर चली गई है, अपनी बुआ के पास।

इस घुटन भरी बोझिल जिन्दगी से हार कर थक कर मन अनायास जहाज के पंछी की तरह फिर फिर उसी ओर पंख छटपटाता है।

लेकिन मनु जब से बुआ के यहां से लौटी है बदली-बदली-सी लगती है। इन दो ही महीनों में उसका बचपना न जाने कहां चला गया है! अब न वह हंसती है न बोलती। खोई-खोई-सी न जाने किस भवर में

डूबी रहती है।

एक दिन देखता हूं वह भारी भारी डग भरती कमरे म आ रही है। इस बार यह नही कहती कि बिज्जो से मिलने आई है। उड़े विश्वास के साथ दरवाजे यों ही बन्द कर पास ही कुर्सी पर बठ जाती है। जहाज के पंछी की तरह चेहरा भारी है—निराश।

नीरेन दा। वह अब सपने में है। हवा से बातें कर रही है। क्या ऐसा नही हो सकता कि कोई एक ऐसी लड़की मिल जाय जो बाबू जी की देखभाल कर ले। मां जी के काम म हाथ बटा सके। भाभी को भी कुछ सहारा मिल जाय और आपकी सेवा भी कर सके तो आप उससे शादी कर लेंगे न नीरेन दा।

मुझे कोई भी उत्तर नही सूझता। मुझसे कुछ भी कहा नही जाता।

वह एक बार दो बार बार बार अपनी बातें दुहराती है लेकिन मेरी जुबान पर लकवा मार गया है। मैं बहरा गया हूं न।

वह अंत म एक गहरा निश्वास छोड़ती है और चली जाती है।

शाम को एक छोटी-सी चिट किसी के हाथ भिजवा देती है। और उसके बाद बनु फिर कभी भी दिखाई नही देती। न खिड़की खोलती है न छत पर टहलने आती है।

और मैं भी शाम म अब बुरी तरह पिसा रहता हूं। पता ही नही चलता कब पौ फटी कब सांझ ढली।

दशहरे की छुट्टी के दिन। हम हरिद्वार होकर आये थे। बाहर भीतर लोगों का जमघट जुटा था। थकावट के कारण म निढाल पड़ा अपने कमरे में पंखा खोल कर सोने को था। सारा मकान सोया था। बाहर चौकीदार के चीखने की आवाज आ रही थी। पास के कमरे म भाभी के सिसकने का स्वर। पराग इन दिनों से बीमार है। मेरी रंग्या (?) रोशनी को छुए चार दिन हो गये।

रोशनी जलती रहती है। मैं बल्ब की ओर देखता रहता हूं। तभी

दरवाजे का कुण्डा-सा खटकता है। दो निरीह आँखें मेरी ओर न जाने किस भाव से झाँकती हैं!

कनु!

अबीर में डूबी सफेद हवेली-सी राख की लकीर-सी!

'अरी कब से खड़ी हो?'

आज बहरी बनने की बारी कनु की है न!

'सुना था तुम्हारा ब्याह हो गया?

कनु टकटकी बांधे मेरी ओर भयभीत आँखों से देखती रहती है।

मुनिया उड़ गयी। नीले परों का चमकता रंग स्याह पड़ गया! घर खरीदने से पहले ही बिक गया! लगता है रेडियो अब संगीत नहीं, मर्सिया सुनाया करता है न!

कनु के गुलाबी अधरों पर जामनी रंग फिर गया है। बुझे दिये की तरह उसकी आकृति-सत्ता शून्य हो गयी है।

'नीरेन दा!' वह आँचल में मुँह छिपाकर, दाँतों से होंठ काट कर फफक-फफक कर फूट पड़ती है।

और कुछ क्षण उसी तरह खड़ी रह कर सिसकती हुई ओझल हो जाती है।

पराग अब असवार नहीं नोचता। यह भी नहीं कहता कि मैं जहाज बना दूँ। वह उड़कर पापा के पास नीमा पर जायगा। भाभी अब चाह कर भी रो नहीं पातीं। उनकी आँखों से आँसू ढुलकते ही नहीं। डाक्टर कहते हैं—बाबू जी दवा नहीं पीते। कहते हैं—व्यर्थ में पैसे जाया करने से क्या! माँ अब मुए तारवाले को भी नहीं कोसती। कनु भूलकर भी एक बार नहीं देखती।

मैं दिन भर इन धूल भरी सड़कों में मारा-मारा फिरता हूँ। घर में घुसते ही पिता जी आँगन पर खड़े मिलते हैं कुछ मिला!

इन 'तीन' शब्दों का चक्रव्यूह मैं भेद नहीं पाता। उत्तर दिये बिना

ही चला जाता हूं। छत पर लेटा-लेटा आसमान पर तनी नीली चादर की ओर देखता हूं।

लोग कहते हैं—कनु हर समय उदास रहती है। अब खिड़की नहीं खोलता। अब बाहर नहीं देखती। शायद कभी-कभी दूर से झलक पड़ती है तो उसके हाथों-हाथ उसे और हाथों में मेंहदी कितनी अच्छी लगती है। जब वह तार में गीले कपड़े फैलाने के लिए झुकती है तो उसकी सुनहरी चूड़ियों की चमक बिजली की तरह कौंध जाती है। मांग में सिन्दूर कितना सुन्दर लगता है। रेशम का लाल डोरा-सा!

लड़कों का ब्याह लड़कियां से हुआ करता है। ब्याह के बाद सब बदल जाते हैं। कनु भी बदल गयी है।

बिज्जो कहती है कनु सचमुच बहुत बदल गयी है। अब बहुत सुख से रहती है। पर उसका बचपना अभी तक भी गया नहीं।

उसने अपने कमरे में कितने ही ढर सारे लाल-नील पर्दे अकारण लटका रखे हैं। गहरा नीला सोफा-सेट है। खूब बोलनेवाला खूबसूरत रेडियो। और कितनी ही मुनिया, गौरया पाल रखी हैं। सुनहरे पिंजरे में एक मखमली काला मैना है। जो दिन रात चिहुर चिहुर चीखती रहती है। जैसे कंठ में कांटा कसक पड़ा हो!

मैं धीरे में देखता हूं। कुछ भी तो दिखलायी नहीं देता। केवल सिकुड़ती सिमटती रंगहीन खोखली दीवारों का प्रतिबिम्ब एक-दूसरे से टकरा-टकराकर बिखर पड़ता है।

बूंद पानी



इतना सारा यह सामान किसका धरा पड़ा है कन्नी ? आफिस से लौटते हुए, घर की देहरी पर पांव रखते हुए माथे पर उभरी पसीने की बूंदों को तिरछी अंगुलिया से समेट कर दूर छिटकते हुए विश्वम्भर ने पूछा : क्या बड़े भैया आये हैं गांव से ?

कालिन्दी ने जैसे सुना नहीं। तमतमाता मुंह झटके से फेर कर सामने से मुड़ी और दूसरे कमरे में ओझल हो गयी।

विश्वेश्वर ठिठक पड़ा। जीभ की नोक को दाहिने जबड़े के दुखते दांत पर टिकाये किंचित् अधर खोले देखता रहा। फिर वैसा ही खोया-खोया-सा आगे की ओर बढ़ा।

अन्दर देहरी के पास दो फटे टायर के मोटे तलुवेवाले, घिसकबरे बेडौल जूते मुंह फाड़ बैठे हैं। विश्वेश्वर समझ गया बड़े भैया होंगे या दाऊजी ! पर एकाएक कैसे ? चिट्ठी तक गिरी नहीं !

कपड़े उतार, पीठ के बल खटिया पर वह गिर पड़ा। छत पर तेजी से घूमते, घरघराते पुराने पंखे की ओर देखता रहा।

कालिन्दी चाय रखकर चली गयी उसे पता नहीं। गुड्डो खिसकती आयी लेकिन उसने देखा नहीं। किसी ने पुकारा कुछ कहा लेकिन उसने सुना नहीं। टकटकी बाँध वह केवल पत्ते की ओर देखता रहा देखता रहा। पत्ता तेजी से हवा काट रहा है। एकाध सूखी घास के तिनके ऊपर से लटकते हुए बुरी तरह काँप रहे हैं। पिछले जाड़ों में शायद चिड़िया ने घोंसला बनाया था। घोंसला कहाँ गया? चिड़िया कहाँ गयी?

हट्‌ हट्‌ तू चोर! तू मरजानी मुई! चुप झूठा कुत्ती सा ! आवाज़-सी आयी तभी।

विश्वेश्वर झटके से उठ बैठा। जैसे नींद से जागा। अचकचा कर इधर-उधर देखने लगा लेकिन दीखा कुछ नहीं। कान लगाकर फिर लेट गया। हाँ चारपाई के नीचे खटर पटर की सी आवाज सुनायी दी। कुछ छीना झपटी कुछ मार-पीट कुछ दबा हुआ शोरगुल बिल्लियों की जैसी लड़ाई।

कौन गुड्डो! चौंककर चारपाई की पाटी के सहारे झुककर झाँका—एक-दूसरे के बाल नोचने में चार नन्हें-नन्हें हाथ व्यस्त हैं। खूब गुत्थम गुत्था हो रही है। पर उसे देखते ही जो जहाँ था वहीं पर रुक गया। जैसे चलती मशीन की बिजली सहसा समाप्त हो गई हो। साँस रोके चार बड़ी-बड़ी भयभीत आँखें सहम कर उसकी ओर देखने लगीं।

अर र र! ये कौन? चारपाई से उछलते हुए विश्वेश्वर ने कहा उह कालिन्दी! ये किस [illegible] से !

आपके गाँव से और कहाँ से! मुँह फुलाते हुए कालिन्दी ने कहा और तनक कर धोती का पल्ला पीछे फेंकती सामने खड़ी हो गई। हाथ हवा में हिलाती हुई बोली देखते क्या हैं भैया जी दो तशरीफ लाये हैं। दो राजकुमारों को भी साथ ले ये हैं। पूरे महीने दो महीने डेरा डाल कर पड़े रहेंगे। निकालो दो सौ रुपये अब ! मैं होती तो एकाध

मेरे गहने गिरवी रख कर लाओ। मया जी आये हैं न गाव से! लाओगे कसे नहीं?

विश्वेश्वर मुह खोल कालिन्दी की ओर देखता रहा। कुछ कहे, उससे पहले ही उस एक कर कुत्ते के पिल्ले की तरह बाहर घसीट कर कालिन्दी ने दोनों बच्चे निकाले और सामने खड़े कर दिये।

पत्नी का यह व्यवहार उसे भला न लगा।

घुटने तक लम्बे स्याह मलमिया के कुरते और फटे हुए घुमरैले मारकीन के पाजामे में लिपटे दोनों बच्चे डर से कांपने लगे। जस उनसे कोई बहुत बड़ा अपराध हो गया हो और अभी अभी जिसकी कठोर सजा सुनाई जानेवाली हो।

दो मासूम चेहरे! खूबसूरत! उदास!

विश्वेश्वर रीझ गया। अजीब-से कुतूहल से देखता रहा—

मनोली-सी गोल-गोल आकृति, कलाई भरी बड़ी बड़ी गुस्सली, डरी हुई आंखें भिचे हुए मृदु अधर!

हंसी आए बिना न रही उसे।

'अरे यह कौन? चहक कर वह बोला हमारा दोनू बेटा है न! और और यह बिन्नो! बिन्दो लाली भई, तुम लोग तो पहचान नहीं जाते रंग कसा हो गया जस सगी भील जसा!

दोनों बच्चे एक-दूसरे का मुह ताकने लगे।

हम से नमस्ते कहा?'

फिर दोनों की आंख मिली। बात शायद समझ में आयी नहीं।

छोटे बच्चे को विश्वेश्वर ने गोदी में उठा लिया। वो मिट्टू सा आया। उसकी बहती नाक धुले तौलिए से पोछने लगा तो कालिन्दी ने गुस्से में उसकी ओर देखा, पर उसी तरह उसका सारा मुह पोछता हुआ सिर हिला कर बोला, क्या हुजूर, किस मजायबघर से तशरीफ लाये? -

मन्धा और छोटा हो गया।

'गांव में धोबी भी नहीं था न! नाई भी नहीं था! कैंची भी नहीं थी! इसे भालू के जैसे बाल बना रखे हैं—या लम्बे-लम्बे! अरे पानी तो होगा ही धोने के लिए! क्यों? क्यों?' दो अंगुलियों के बीच चिमनी की तरह उसकी नाक पकड़ते हुए हिलाते हुए विश्वेश्वर ने कहा 'क्यों?'

कालिन्दी यह देख कर जल कर राख हो गई। जैसे उसने किये कराये पर पानी उलट पड़ा हो। हाथ नचाती हुई बोली 'चाय पीनी है या नाटक देखना! छः बजे आपके दोस्त साहब अपनी धरम-पत्नी सहित बाल-गोपालों की पल्टन लिए पधारने वाले हैं खाने को। बुला तो लिया बड़े रोब से! घर में है भी कुछ! बनाऊं क्या अपना सिर!'

विश्वेश्वर ताड़ गया। पहले तो क्षण भर गम्भीर रहा फिर चुस्कियां लेता हुआ बनावटी धीमे स्वर में बोला 'क्या खायेंगे वे पल्टन से कर इस तरह से! हमने उनका क्या बिगाड़ा है जो वे खाने को उतार हों?' यह विश्वेश्वर हंस पड़ा। कालिन्दी भी क्या करे! हंसे बिना न रह सकी। फिर भी गुस्से से बोली, 'देखती हूं क्या खा रहे हैं! पूछना उन्हीं से!'

'पर तुम क्या परेशान होती हो! कोई नवाब की औलाद तो है नहीं। खायेंगे तो घर में जो होगा खिला देंगे। बस!'

'बस!' हाथ नचाया कालिन्दी ने 'घर में भूनी भांग भी नहीं। उस पर कुछ भी कोर-कसर रह गई तो उन्हीं के सामने मुझ पर बरस पड़ोगे। उस दिन ही जानबूझ कर बुरा बनाया। और घर में तो जैसे सामान है। पड़ा-पड़ा सड़ रहा है। दस-दस दिन तक अपने दोस्तों को राम कथे-सा किस्सा गढ़ कर सुनाते फिरोगे। खान-बखान तरह-तरह के खाने लोग। मैं बाज आई …।' गरम तवे-सा तमतमाता मुंह पोंछती तेजी से कालिन्दी चली गई।

'तुम्हारे दोस्तों को आज खाना खिलाया तो मेरा नाम बदल देना।

बुला लाते हैं जिसे जी में आता है। जैसे धरमशाला है। चौके की ओर से अंतिम चेतावनी आई।

चूल्हे पर चढ़ी पतीली उतर गई। रसोईघर के किवाड़ धड़ाके से बंद हो गये। कालिन्दी मुंह बिसोर कर अपने कमरे में चली गई। पलंग की पाटी पर बैठ कर नीचे की ओर लटकते पांवों को हिलाती हुई कुछ सोचती हुई कुछ परेशान-सी उलझी हुई बुनाई की सीकों में ताग पिरोने लगी। हाथ तेजी से चल रहे हैं। हृदय तेजी से धड़क रहा है। नथुने तेजी से फड़क रहे हैं। होठ गुस्से से कांप रहे हैं। और बुनाई गलत हो रही है। लेकिन उसे क्या! हो ती रहे! लाख हाती रहे—बला से!

एक ही सांस मे पानी की तरह चाय पी कर विश्वेश्वर ने ठण्डा प्याला धरे रख दिया। नाश्ते की तश्तरी दोनों बच्चों के सामने धर दी। फिर पलंग पर लेट गया और छत पर लटकते पंखे की ओर देखने लगा।

कुछ क्षण बाद उठा तो देखा काफी वक्त गुज़र गया है।

'कानी! अरी ओ कालो! बड़े प्यार से मीठी आवाज़ में बोला, 'भई कहां चली गई हो?'

बाहर सहन की ओर झांका। बंद रसोईघर की ओर झाका। कुछ और आगे बढ़ा कालिन्दी!

कालिन्दी ने मुंह फुला लिया बबूल की तरह।

कालिन्दी बोल तो वह कालिन्दी ही क्या!

'वाह यहां बैठी हैं रानी साहिबा! मैं कमरे-कमरे में विरही यक्ष की तरह बावला-सा भटक रहा हूं। बाहर बरामदे में उदास पड़ी अंगीठी के धुए से उमड़ते घुमड़ते बादलों से सन्देश भेज रहा हूं पर तुम सुनती नहीं। फिर कुछ रुककर बोला 'च्चुऽ! चांद तो यहां निकला! मैं कहूं आज रोशनी कहां!

कालिन्दी ने मुंह फेर लिया।

विश्वेश्वर उसके साथ पलंग पर बैठ गया। कुछ और सट कर बैठ गया। कंधे पर बिखरी लटों को सहलाता हुआ बोला तुम मुस्कराती

हो तो बरबस फूल झड़ने लगते हैं। तुम गुस्सा होती हो तो और भी अधिक सुन्दर लगती हो। सोचता हूं चकोर कितना मूरख प्राणी है। तुम्हारी तरफ न देखकर चांद की ओर क्यों।

बस-बस रहने दो! मुझे यह बकवास अच्छी नहीं लगती। मुझे छोड़ दो बस! गुस्से से कालिन्दी और परे हट गई।

मगर पहले यह बतलाओ तुम्हें कौन-सी छूत की बीमारी है! तुम कौन-सा ऐसा भयंकर संक्रामक असाध्य रोग है जिसकी वजह से तुम दूर भागती हो! सच! वह और खिसका तो कालिन्दी दूर चली गई और पलंग के दूसरे सिरे पर बैठ गई।

विन्देश्वर सोचता रहा। फिर तनिक और आगे बढ़ता हुआ भारी आवाज में बोला तुम्हें मुझसे नफरत है न कालिन्दी!

कालिन्दी चुप थी।

हां कहो! कहो! बोलो! डरती क्यों हो—मैं बहुत बुरा हूं न! विन्देश्वर की निगाहें सामने मेज पर टिकी थीं।

कालिन्दी फिर भी चुप रही।

बोलो भी—मैं बहुत बुरा हूं न!"

हां! कालिन्दी ने होंठों को सिकोड़ते हुए सिर हिलाया।

ओह! तो! जैसे उसे मनचाही बात मिल गई। उसने मेज पर रखा सब्जी छीलने वाला चाकू उठाया और सामने रख दिया 'लो! लो न! डरती क्या हो! लो!

विन्देश्वर उसकी भिंची मुट्ठी में जबरदस्ती चाकू की मूठ दबाने लगा और वह गुस्से में झमझमाती बचाव करने लगी। इसी छीना झपटी में डोरा न जाने कहां बिखर गया। आंखें न जाने कहां गिर गईं। चाकू फर्श पर न जाने कहां मुड़कर पड़ा। कालिन्दी की कलाइयों को विन्देश्वर की कलाइयां दबोच जा रही हैं। दबोच जा रही हैं!—' छोड़ो भी! छोड़ो भी!! कालिन्दी कहती चली जा रही है।

बड़ी मुश्किल से झटके के साथ कालिन्दी ने अपने को छुड़ाया।